जब सारा आलम सोता है

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

अनुराग प्रकाशन
नई दिल्ली-110030

आमुख

'उग्र' पाण्डेय बेचन शर्मा एक साधारण नाम नही है, सारा हिन्दी ससार एक अर्से तक 'उग्र' की उग्रता मे कांपता रहा, उससे लोहा बजाने मे डरता रहा, मगर 'उग्र' जिनका वाह्य व्यक्तित्व देख हिन्दी ससार ने उन्हे जीतेजी उपेक्षा के गर्त मे और विरोध की खाइयों मे ढकेल दिया, के जीवन की यह सबसे बड़ी त्रासदी और विडम्बना रही थी। उनके अन्तरग कोमल पक्ष को जो नारियल की तरह बाहर से कठोर और अन्दर से मृदु और कोमल था, को कोई भी नही जान पाया।

'उग्र' के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर विगत 14 वर्षों मे अनथक अनवरत परिश्रम करते हुए उनके कृतित्व के भी अनछुए पहलुओ पर कार्य किया है। अब तक 'उग्र' पर, उग्र के साहित्य पर मेरी 24 मे अधिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिसका हिन्दी संसार ने सम्यक् स्वागत किया है। हाँ, समीक्षकों से अवश्य हमेशा की तरह। जैसा उग्र के साथ हुआ 'उग्र' के साहित्य को भी उपेक्षा और अवमूल्यन मिला है।

खैर—

मेरे लबो पे दुआ,
उसके लबो पे गाली
जिसके अन्दर जो था
वही तो बाहर निकला।

—राजशेखर व्यास

वेदकुंज
अ 14, बसंत विहार,
नई दिल्ली-110051

क्रम

जब सारा आलम सोता है	11
आज़ादी से आठ दिन पहिले	28
टाम, डिक, हैरी एण्ड कम्पनी लिमिटेड	35
झाऊलाल	41
रंग	50
मलंग	67
राष्ट्रीय पोशाक	87
चित्र-विचित्र	93

जब सारा आलम सोता है

जब सारा आलम सोता है

कहने को (बम्बई, मालाबार पहाड़ के) रिज-रोड स्थित 'हवाई महल' चौमहला मकान पर रहता उसके हरेक खण्ड में एक ही एक परिवार।

पहले खण्ड में पत्रकार—प्रदीप; दूसरे खण्ड में बड़ा सी० आई० डी० अफसर—खण्डालावाला; तीसरे मे कांग्रेसी महानेता माया मुकुन्द मोड़े तथा चौथे खण्ड मे रहते देवदत्त दाधीच दैवज्ञ, ज्योतिपाचार्य। हवाई महल से समुद्र अपार नजर आता, आकाश भी नजर आता अपार, मालाबार पहाड़ पर खड़े धवलरंगी महलों का विस्तार नज़र आता अपार, सुख अपार, सौन्दर्य अपार। हवाई महलवालों को उसी मोहक पहाड़ की तलेटी में विस्तृत फैली महानगरी मुम्बई के अब 40 लाख 1964 मानवों का किलबिल कोलाहल, अपार दुख—बिलकुल नजर नही आता था। हवाई महल में हर घडी मौजीली हवा तेज रहती थी। बहारदार!

30 जनवरी सन् 1948 की बात। उसी दिन पत्रकार प्रदीप का जन्म दिन था। दिन के दो ही बजे उक्त चारो मित्र जर्नलिस्ट के नवसज्जित बड़े हाल मे एकत्रित हो गये। सम्पादक ने किसी को कोलैप्सिग कुर्सी पर आसन दिया, किसी को कोच पर, किसी को कुशन पर।

"आज मैंने," प्रदीप पत्रकार ने आत्मीयता के भाव से भरकर कहा—"आज मैंने आप लोगों की दावत की एक नयी तरकीब सोची है—यानी खाना वगैरह बिलकुल तैयार नही कराया है···"

"अरे, मार डाला रे!" जननायक माया मुकुन्द मोड़े ने मुड़कर कहा।

"खूब!" सी० आई० डी० का बड़ा अफसर खण्डालावाला ने कुढ कर

पूछा—"दावत या अदावत ?"

"इसके यहाँ तर माल मिलेगा, कचराकूट का चान्स; इसी विचार से मैंने कल शाम से ही अनशन कर रखा है।" दैवज्ञ देवदत्त ने खीझ के दाँत दिखाते हुए कहा।

"मगर," अपने शब्द-जाल के स्टंट से मन-ही-मन प्रसन्न पत्रकार प्रदीप ने कहा—"खाना तैयार न कराने का अर्थ यह नहीं कि खाना मिलेगा ही नहीं। मिलेंगी मित्रों को मनचाही चीजें। यह एक-एक 'चिट' लीजिये और अपनी-अपनी पसन्द की एक-एक चीज लिख दीजिये। वही अभी तैयार करायी जायगी, मँगायी जायगी। अब कृपा कीजिये—लिखिये।"

तीनों मित्रों ने वहम किये बगैर अपने पुर्जे पर अपनी मनचाही चीज का नाम लिखकर सम्पादक को दे दिया। पुर्जे पढ़ते ही पत्रकार पहले तो मुस्कराया, फिर बोला—

"खुशी की बात है, हैरत की बात—तीनों मित्रों की फर्मायश एक—शराब ! भूखा कोई भी नहीं, प्यासे सभी। मुझे कोई आपत्ति नहीं, पर शराब मिलना मुश्किल है। 'प्राहिबिशन' की वजह से बम्बई की वह ब्यूटी जाती रही जो अंग्रेजी अमलदारी में थी। शहर के कोने में रेस्टराँ गली-गली में, होटल में गुलदस्ते। नगर में मदिरालय, उपनगरों में, उपवनों में ताड़ी की—'बूथ'।

"अजी लाख प्राहिबिशन हो या मद्य-निषेध—बम्बई में तो आज भी जहाँ माँगो वहीं शराब। मेरी आँखों से क्या छिपा है।" सी० आई० डी० बोला।

"तो आप ही मँगा दें हुजूर !" नेता ने पारसी से आग्रह किया मीठा ताना देते हुए चुस्ती से—"युगों से पारसी मित्र सारी बम्बई को बढ़िया से बढ़िया शराब और ताड़ी पिलाने का पुण्य कर्म करते आ रहे हैं। आप भी चन्द मित्रों को पिलाकर कुछ छोटे पारसी न बन जायेंगे।"

"समझता हूँ साला तेरा ताना," खुनसाया खण्डालावाला—"पारसियों ने पिलाया किसी साले के गले में जबरदस्ती डाल कर। इसी वक्त सबने शराब ही माँगी—सो किसी पारसी से पूछ कर क्या ? मैं कहता हूँ जब तक पीने वाले हैं, पिलाने वाले रहेंगे ही—तो पारसी गरीब ने पिलाकर किसी

का गला काटा ? ख्रिस्तान पिलाता तो ठीक ? मुसलमान पिलाता तो ठीक ? फारसी, जर्मन, अमरीकी पिलाता तो आबेहयात पिलाता क्या, फिर पारसियों ने ही क्या हलाहल दे दिया ? शराब बेचने वाले पारसियों में मैं ऐसे-ऐसे दिखा सकता हू जिन्होंने पचासो लाख की शराबें बेचने पर भी एक बूंद खुद कभी नही पी। यह योग है—योगाभ्यास। व्यापार योग इसका नाम रख लो। योग के आठ अग, व्यापार के भी आठो अग। योगी मुक्ति के लिए तपता, व्यापारी मनी के लिए। पारसी सच्चा व्यापारी है। हाँ बेची शराब पारसियों ने व्यापार—योगियो की तरह—मुनाफा देख कर, यह उनकी बुराई है—देख लो। और मत देखो पारसियों की उन अमूल्य सेवाओ की तरफ जो हमारे बुजुर्ग एक युग से सारे देश की करते आ रहे हैं। मत देखो दातव्य सस्थाओं की तरफ, अस्पतालो की तरफ, बड़े-बड़े दानो की तरफ, दादा भाई की तरफ, फीरोजशाह की तरफ। बम्बई को शराब हमने पिलाई तुम्हें मालूम है; बम्बई का विकास हमने कितना किया तुम्हें नही मालूम ! तुम काले हो काले। कुत्ते को शराब पिला दूँ जरूरत पड़े तो स्वर्ग मे लाकर। पर तुम्हारे लिए नही। तुममें पात्रता नही पीने की। तुम्ही सुरा को बदनाम करने वाले असुर हो।"

"हीयर-हीयर !" पत्रकार उछल पड़ा—"खण्डालावाला ग्रेट-स्पीकर—एग्यूज ! मगर लेक्चर जरा लम्बा हो गया, इस लिहाज से कि पीने मे देर हो रही है और लाना पड़ेगा हजरत को ही क्योकि आपने सबके सामने मंजूर किया है कि देश के सबसे बड़े कलवरिया कर्मयोगी आप ही है, कर्म-योगी—कोई हो।"

"फिर ताना !" पारसी कुड़कुड़ाया—"प्लेटफार्म पर नाचने वाला का सपोर्टर कलमनचनियाँ, लिट्टी वाले का भाई गडेरी वाला। है कलवरिया कर्मयोगी पारसी, पर भाई प्रमोद ! यह तो बतलाओ कि गाँजे की वह कली कहाँ से आती है जिसे गुलाब मे मल, सिगरेट मे भर कर तुम दिन-रात पिया करते हो ? यह नेताजी चुपके से अफीम जो गटकते है उसकी गुटिया भी क्या कलवरिया से ही आती है ? और ज्योतिषाचार्य की भग क्या आसमान से बरसती है ? जब कुछ न कुछ सभी पीते है तब सभी पियक्कड़ है न कि अकेले शराबी। शराब मैं ला दूंगा—बिस्की,

ब्रैण्डी, रम, पोर्ट, लिकर, शैम्पेन शैंटू, ब्यौंडा, ठर्रा—जो बोलो वही, पर पहले मिस्टर मोड़े को माफी माँगनी पडेगी ।"

"माफ कर बाबा ।" मोड़े ने हाथ जोड़ कर कहा—"और मेरी मान, तू काग्रेस मे भर्ती हो जा, नौकरी छोड दे, तू प्लैटफार्म पर गजब की स्पीच देगा।"

"मगर मैं तो शराब पीता हूं—रोज ।"

"शराब पीना बुरा नही, बुरा है बेवकूफ होना । अक्ल जहाँ वहाँ बुराई कहाँ ? पालिटिक्स का अर्थ है—ऐब कर साथ हुनर के !"

चार बज गये चखचख मे तब शराब आयी, चारो चखने बैठे, नमकीन चखने के संग बरफ, सोडा, लैमन । चारो के पेट में पेग उतरा कि सिगरेटें सुलग उठी, कमरे के वातावरण मे धुआँ छाने लगा । सबके चेहरे खिल उठे एक सी० आई० डी० खण्डालावाला को छोड कर । सभी चहक चले पर वह चुप रहा ।

"क्यो रे पारसी के पट्ठे !" पत्रकार ने ठट्ठे की आवाज मे कहा—"अभी तक तेरा मुँह सीधा नहीं हुआ । मोड़े ने माफी माँग ली फिर तूने कुछ कम नही सुनाया उसको—फिर ? अब क्या बाकी है ?"

"मोडे की बात नही—आज सबेरे से ही मेरा माथा भन्नाया हुआ है। उस विक्टर के कारण, वही सी० आई० डी० इन्सपेक्टर विक्टर। बिना कहे-सुने गायब हो जाता है और लौटने पर बातें बनाने लगता है। सौ वार मैंने उसको सुनाया कि वह सी० आई० डी० नही बावर्ची है, उसे मेरे किचन की निगरानी करनी चाहिए—तनख्वाह इन्स्पेक्टरी की ही ले। पर उसे तो हराम मे सरकार के पैसे लेने हैं । इधर-उधर सैर-सपाटे कर लौटेगा तो कहेगा—बडी कान्सपिरेसी, भारी षड्यन्त्र एक दल विशेष कर रहा है। खतरा सुनावेगा नेहरू, पटेल, आजाद— यहाँ तक कि गाधीजी की जान पर भी खतरा। बेवकूफ को यह मालूम नही कि खतरो का खजाना इग्लैंड चला गया अंग्रेजी राज्य के साथ ही। अब काग्रेसी राज है और अमन है, चैन है। कोई बेवकूफ ही हमारे नेताओ पर किसी के द्वारा हाथ उठाये जाने की कल्पना कर सकता है।"

"औरों की बातें तो कुण्डली देख कर कल बताऊँगा पर हाँज तक

गाधी जी का सम्बन्ध हैं, मैं दावे से कह सकता हूँ कि वह 125 वर्ष की अवस्था में मरेंगे—इसके पहले हर्गिज़ नहीं।" दैवज्ञ देवदत्त ने शराब के हर्ष से आँखें विस्फारित कर कहा।

"बस बहक चले ज्योतिषाचार्य। मैं कहता हूँ, सारे के सारे ज्योतिषी हवा में तीर मारते हैं, कुछ नही जानते। आप ही बतलाइये—महात्माजी का जन्म दिन, मास, पक्ष, लग्न का पता है आपको?" नेता माया मुकुन्द मोड़े एक तो स्वभाव मे ही ज़रा तीखा बोलने वाला दूसरे सीने मे तेजरो शराब। दैवज्ञ ज्योतिषी भन्ना उठा।

"बहके तो नही आप, यह प्लेटफार्म नही, नक्षत्र लोक है। गाधीजी का जन्म हुआ था विक्रम संवत् 1926 की त्रयोदशी के दिन रविवार को।"

"सरासर गलत—दिन रविवार नही, शनिवार था। ऐसा स्वय महात्मा जी ने लिखा है अपनी आत्मकथा मे।" मोड़े ने ललकारा।

"ऐसा ही कुछ मैंने भी पढा है।" पत्रकार ने समर्थन किया।

"आप लोगो ने कुछ भी पढा हो, ज्ञान ज्योतिष का मुझे है। बडे-बडे ज्योतिषियों ने महात्माजी का जन्म दिन रविवार लिखा है, तब गांधी जी कुछ भी लिखा करें। वह अन्तर्यामी तो हैं नही, दैवज्ञ तो हैं नही।"

इस पर दूसरे ठहाका मार कर हंस पड़े। खण्डालावाला भी जिसका मुँह शुरू मे ही सूजा हुआ था, खिलखिला पडा। ज्योतिषी आवेश में आ गया, दैव-विद्या के प्रति दुष्टों की अवज्ञा देख कर। तमककर बोला वह—

"तुम जन्म दिन की बात कहते हो—मैं कहता हूँ मुझसे पूछ लो महात्मा का मृत्यु दिन। जन्म दिन ज्योतिषी ने जाना तो क्या जाना जिसे चमारिन तक बतला सकती है। मृत्यु दिन बतलाना भविष्यवक्ता का हिस्सा है—मेरा।" गिलास की शेष मदिरा पेट में उँडेल कर फीका मुँह पोंछने लगा वह।

"अच्छा बतलाओ!" पत्रकार ने अशुभ प्रश्न किया—"कब मरेंगे महात्मा जी?"

"तुझे क्या जल्दी पड़ी है जो साधू का ऐसा भविष्य शैतान से पूछता है? सनसनीखेज खबर छापने को मरा जा रहा है या महँगे विशेषांक निकालने को?" खण्डालावाला को बहुत ही बुरा लगा पत्रकार का

प्रश्न—"मैं कहता हूँ महात्मा जी कभी न मरें—अमर हों ?"

"और तू सी० आई० डी० का बड़ा अफसर बना मालेमुफ्त उडाया कर।" प्रदीप को चढ चली विस्की विलायती—"तुझे गाधीजी की जरूरत मुझसे ज्यादा है। स्टेट रहे तो गवर्नमेण्ट रहे, तो सेना पुलीस रहे, सी०आई० डी० रहे—तू रहे। गाधी तेरे लिए अच्छे, मेरे लिए भी तो बुरे नही, झूठ न कहूँगा, पर हर बात मे जो वह महात्मागीरी की टाँग अडा देते है, मुझे बहुत बुरी लगती है। वह कहते है कि केवल उनका 'हरिजन' अखबार है, बाकी सारे का सारा कूडा, नापाक। वह कहते है कि विज्ञापन न लो, सनसनी को—सनकने न दो, अखबार नही—'रघुपति राघव राजा राम' निकालो। वह यह नही सोचते कि यह जर्नलिज्म नही, उसकी जड काटने वाली सलाह है। सभ्य ससार मे जर्नलिज्म एक माना जाता है आर्ट—टेकनीक—ट्रेड है। जब-जब गाधी जी बेसमझी बातें करते है तब-तब मेरे दिल मे आता है कि वह हिमालय चले जाते तो बेहतर। उनका ध्येय हिन्दुस्तान को आजाद बनाना था सो पूरा कर चुके।"

"हिमालय महात्मा जी सौ जन्म न जायगे।" ज्योतिषी ने सहज भविष्य सत्य कहा, सुरावेश मे।

"महात्मा जी को हिमालय भेजना," मोड़े ने कहा—"महा मूर्खता होगी। वह 'स्पेण्ट फोर्स' नही, दुनिया जानती है। वह एटम बम से घायल विश्व के हृदय पर शीतल अमर लेप है। उनकी हमे अभी बहुत जरूरत है।"

"गाधी जी प्लेटफार्म के बादशाह," पत्रकार ने लीडर को सुनाया—"तू प्लेटफार्म का गुलाम, हुक्म का गुलाम, अनआरिजनल—अमौलिक, डाई कमाण्ड का ग्रामोफोन—हिज मास्टर्स वायस ! तू राजनीति नही समझ सकता, भले ही वोटों के बल राजदण्ड पा जाय। गाधीजी के हिमालय जाने मे तू तो रसातल चला जायगा। अरे उस्ताद ! तेरी तो पाँचों घी मे बापू के भी साथ, बैताल के भी !"

"मैं 'फेथ' नहीं पालिसी मानता हूँ—गाधी की नीति या राजनीति को।" जरा झेंपकर मायामुकुन्द मोड़े ने मजूर किया—"चर्खे मे मेरा विश्वास नही, कभी चलाया हो तो कसम ले लो। खद्दर मे मेरा विश्वास

नही, हमेशा सिल्क ही पहनता हूँ, दीन जीवन मुझे पसन्द नही—चर्चिल की तरह—कार मेरी व्यूक प्रेसिडेण्ट। इतने पर भी अगर कोई ऑरिजिनेलिटी न परखे तो हो चुका आज़ाद यह देश !"

"ऑरिजिनल ! ऑरिजिनल !!" चिल्ला उठा सम्पादक प्रमोद—"तू मोड़े, भारी ऑरिजिनल—महा मौलिक मानव रे ! क्रिमिनलों की काल कोठरी से निकल कर तू विधान परिषद् मे आया, सेक्रेटेरियट में पहुँचा; गडेरिया बन गरीबों को भेडो की तरह चराया, ऊन काटे, गले मारे और धनी गनी बन बैठा, जिसके सात पुश्त थूक भरी जमीन पर तलवे रगडते रहे, वह लक भरी व्यूक पर चलता है।"

"कुछ भी मैं करूँ पर करनी कुछ करके करता हूँ—सारी जिन्दगी खटा, जेलों तपा, 21 देखा, 42 देखा तब उस जगह पर पहुँचा। जलता क्यों है कलम कसाई ?" मोडे भी आखिर नशे मे ही था—"अपनी तो निबेड ! दूसरों की रोग बला, गर्मी सूजाक, स्वप्नदोष, निन्दा और द्वेष पर ही तो चरित्रहीन पत्रकार की मौलिक-माया टिकी है। कहूँ तो नशा हिरन हो जाएगा। पत्रकार ही आज की दुनिया के गले मे अनीति का फन्दा कसे हुए अमीरअली ठग है और सारी पत्रकार कला है एक शब्द में—ठग वृत्तान्त माला।"

ज्योतिषी को पत्रकार और लीडर की लडाई खल गयी थी कि देर से वह गांधी जी का मरण मुहूर्त बतलाने को व्याकुल था।

"लड़ते क्यों हो ?" उसने दोनों से कहा—"गांधी जी हिमालय में नही, मरेंगे मैदान मे—आज नही 125 वर्ष की उम्र मे—56 साल बाद। तब तक हममे से कौन रहता है, कौन देखता है। गाधी जी जब मरेंगे तब शनि शत्रु राशि मे चला जायगा, शनि मे शनि का अन्तर और अन्तर मे गुरु का प्रत्यन्तर होगा—वही क्षण महात्मा के लिए प्राण-वियोगकारक प्रमाणित होगा।"

नौकर ने आकर अदब से सूचित किया कि खण्डालावाला साहब से सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर विक्टर मिलना चाहता है। कहता है, बहुत जरूरी काम है।

"बोलो बैठें बाहर !" बिगड़ा अफसर—"दिनो गायब-गुल रहने के

बाद आया है जरूरी खबर सुनाने। मैं इसे निकाल दूंगा। मैंने आफिस भर को सुना दिया है। यही सुनकर हरामखोर खुशामद करने आया होगा। मुझे उल्लू बनाने। बोलो—चैठे। साहब को अभी फुर्सत नहीं।"

नौकर सकपकाकर उल्टे पाँव लौटा। खण्डालावाला ने गिलास खाली किया। फिर सिगरेट सुलगा कर बोला—

"खुदा के लिए मरने का यह सब्जेक्ट ही छोड़ दिया जाय तो बेहतर। शराब के रंग मे गाधी जी की चर्चा ही बेमौजूं। इस वक्त तो किसी फिलासफर का किस्सा छिड़े जो पीने वाला हो या रहा हो—जैसे—अरे साला—नाम याद नही आ रहा।"

"जैसे सुकरात," मोड़े ने कहा। और पारसी उछल उठा—"वही, वही—मैं उसका नाम भूल रहा था। वह महात्मा से कितनी सदी पहले जन्मा—महात्मा, यूनानी, महा दार्शनिक। वह डटकर पीता और जिन्दगी का नाम ज़िन्दादिली बतलाता था।"

"सुकरात जिन्दादिल था, पर अमीरी पसन्द नही था। वह मोटा मैला कपड़ा पहनता, नगे पाँव घूमता और सबकी कल्याण-कामना करता था," मोड़े ने बतलाया—"पीने का एक दोष उसमें न होता तो ईसामसीह से पाँच सौ साल पहले और महात्मा जी से उन्नीस सौ बरस पहले उसने वही करतब किये थे जो पैगम्बर करे।"

"अरे साला वह पीता भी था तो मामूली पियक्कड की तरह नही," खण्डालावाला बोला—"वह पीता था बशंकर की तरह। नशा ही नहीं, हलाहल 'हेमरॉक भी।"

"अजी," दैवज्ञ देवदत्त ने तुक भिडाया—"पीना मनुष्य की प्रकृति मे है। विश्वास न हो तो 'गरुड़ पुराण' मे देखो, इन्सानी चोले की कलई खोलकर रख दी गयी है जिसमे। एक आदमी की देह मे क्या-क्या है—रक्त, हाड-मांस तक की वर्णन, नसों-रोओं तक की गिनती। उसमें लिखा है साफ कि आदमी की देह में ही शराब होती है। भीतरी मद का प्रमाद सभी को होता है—'पीत्वा मोहमयी प्रमाद मदिरा मुन्मक्त भूत्वा जगत' भर्तृहरि ने लिखा है। गाधी जी जब-जब मद्य निषेध पर जोर देते हैं तब-तब मुझे हँसी आती है—असम्भव बात। समुद्र मन्थन में वारुणी निकली

है—14 सत्य रत्नों मे से एक है, अमृत और लक्ष्मी की भगिनी है शराब। मोमपायी ब्राह्मणों ने समझा था इसे। बनिया क्या समझेगा—बकरी का दूध पीने वाला।"

"सुकरात तो खूब ही पीने वाला था," मोडे ने दर्शन परिचय दिया—"गाधी जी चेलों के साथ चर्खा चलाते सूत यज्ञ करते है वैसे ही सुकरात अपने चेलों के साथ पीया करता था। वह चुक्कड़ से नही मटके से पीता था। डटकर पीने के बाद, इन्तहाए नशा में उसे होश आता और ब्रह्म ज्ञान की बातें। गांधीजी के चेले बड़े-बडे है वेशक पर सुकरात के चेले, कुछ छोटे-छोटे न थे। उनमे अफलातून था, अरस्तू था, कितने बड़े-बडे कवि, नाटककार और साहित्य विधाता थे।"

"अरे साला!" पारसी को कुछ याद आयी—"एक बार कलवरिया में बडे-बड़े यूनानियो के संग सुकरात पी रहा था और चर्चा छिड़ी प्रेम की। यही कि प्रेम है क्या आखिर? कौन-सी बला?"

"हाँ-हाँ, खूब प्रकरण याद आया!" मोड़े ने प्रशंसा भरे स्वर से कहा—"मैंने भी वह घटना पढी है। एक ने जवाब दिया था कि प्रेम परम प्राचीन देवता है—सबसे ज्यादा शक्तिशाली। तभी तो प्रेम मे मामूली मनुष्य भी बड़े-बडे काम कर गुजरता है। प्रियतम के सामने कायरता दिखाने से वह मर जाना बेहतर समझता है। मुझे प्रेमियों की एक प्रेम-पलटन कही मिल जाय तो मैं पृथ्वी को पराजित करके रख दूं।"

"कर चुकी प्रेम-पलटन पृथ्वी पर विजय"—पत्रकार प्रमोद टेबुल पर की सभी गिलासो मे पाँचवाँ पेग भरते-भरते वोला—"प्रेम-पलटन न तो कभी थी, न आज ही तैयार की जा सकती है। आज के हवाई युग, एटमी-युग, गन युग मे अस्त्रहीन, शस्त्रहीन दुर्बल प्रेम-सेना क्या कर सकती है?"

"क्या कर सकती है? सुख की रास रच सकती है पवित्र प्रेम-सेना—" दैवज्ञ जी सनके—"एटम बम करोडों रुपये में जो काम नहीं कर सकता वही कत्लेआम प्रियतम के जुंबिशे अब्रू से एक मुहूर्त-सेकेण्ड में हो जाता है। प्रेम-युद्ध कैसा मधुर! लड़ते हैं मगर हाथ मे तलवार भी नही! गन तो दूर की वात। मशीनगन पर तो लानत!"

"बहकिए नही—सीरियस चर्चा में—" पत्रकार ने ज्योतिषी को

ललकारा—"प्रेम की ऐसी बातें खयाली कवि ही कर सकता है, पालिटीशियन नही। सुकरात ने जिस जनतन्त्र की कल्पना की थी कवि को उसके बाहर निकाल दिया था, कान पकड़ कर! देश के व्यवस्थापक दार्शनिक बनाये गये, निस्पृह!"

"कवि क्या दार्शनिक नही, नि.स्पृह नही?" दैवज्ञ ने तमककर पत्रकार ने प्रश्न किया।

"है कवि दार्शनिक, पर निस्पृह मैं उसे नही मानता," पत्रकार ने उत्तर दिया—"उलटे स्पृहा के ही चश्मों से वह दुनिया के नवों रंग देखता, अनुभव करता, गाता रोता है। वह भ्रमर है—कली-कली, गली-गली का रसग्राही। कवि दार्शनिक उसी रंग का जिस रंग का गिनी-गोल्ड। कसौटी पर कसिए तो असली सोना कुछ और चीज़। वैसा ही निष्काम कर्मवीर सर्वहित चिंतक विज्ञानी दार्शनिक होता है।"

"असिल सोना हिरण्यगर्भ कवि है।' दैवज्ञ देवदत्त अड़ गया—"कवि भगवान का एक नाम है—'कविर्मनीषी परिभूस्वयंभू'। वेदो के मुँह से निर्गुण के बहाने अपना गुण गाकर कवि सत्य को अक्षर बना देता है। कल्पना को सत्य और शाश्वत। सुकरात ने जिस जनतन्त्र की कल्पना मात्र की उसी का एक्सपेरिमेण्ट भगवान परशुराम ने दार्शनिक ब्राह्मणों को दुनिया का जन राज्य दे-देकर एक नही इक्कीस बार किया।"

"वेरी गुड!" मोड़े ने दाद दी पंडित की सूझसमता की—"यह सही है—कि आर्यों ने यूनानियो से लाखों बरस पहले जनतन्त्र का सफल एक्सपेरिमेण्ट किया था, पर परशुराम को मैं ठोस ठण्डा दार्शनिक मानता हूँ न कि कल्पनाशील कवि, तुक बन्द रागिया।"

"परशुराम केवल कवि नही," ज्योतिषी ने जवाब दिया—"वही दशो अवतारो मे आदि महाकवि है। सुकरात के लकडदादा से करोड़ो वर्ष पहले परशुराम ने दुष्टों—फासिस्टों—का दमन कर सर्वहित चिन्तक उसी जनतन्त्र की कल्पना प्रत्यक्ष कर दिखायी थी—जिसके व्यवस्थापक सर्वस्व त्यागी दयालु ब्राह्मण थे दार्शनिक। कोरा दार्शनिक केवल कल्पना कर सकता है, सृष्टि नही, निर्माण नही। इसी बात में कवि दार्शनिक से बड़ा, विश्वविधाता का नामारासी है। परशुराम ठण्डे दार्शनिक नही,

अग्नि दर्शन थे जिनके कृपा-कृपीट में जल बल जलकर ससार का सोना पापमालिन्य रहित उज्ज्वल हो उठा था। एक नही इक्कीस बार। तब जन राम-राज्य कायम हो पाया। और परशुराम कवि थे तटस्थ, निर्लिप्त, निष्काम कर्मवीर, रणधीर शिरोमणि। इक्कीस बार विश्वविजय करने वाले उस ब्राह्मण ने इक्कीस कौपीनें भी तो न ली। राम-राज्य कायम होते ही भरत खण्ड तक का त्याग कर दिया था भार्गव भगवान ने। वह किसी दूसरे दूरस्थ द्वीप मे जाकर राम भजते थे। परशुराम भगवान महाकवि थे, शिवदत्त प्रचण्ड परशु उनकी प्रतिभा, प्रलय छन्द, ताण्डव गति, आनन्द भैरव राग। परशुराम की तुलना मे सुकरात—हिमालय की तुलना में भुनगा। कवि की तुलना मे दार्शनिक—विराट रूप की तुलना मे बहुरुपिया।"

"'आइ वेट !'—खण्डतावाला ने चमक कर कहा—"अब पडत फार्म में आ गया है; जैसे दो साल पहले डोपिंग के बाद घोडा 'ब्लैक हुमार'। एक-एक मिनट में एक-एक रेस जीता नशे में वह घोडा। वैसे ही एक-एक मिनट मे ज्योतिषी जी अक्ल के घोडनो को हटा रहे हैं। खूब सपोर्ट किया परशुराम का—सुबहानअल्ला !"

इसी वक्त पीछे-पुलिस लगे चोर की तरह इन्स्पेक्टर विक्टर भागता आता नजर आया—पीछे पुकारता, चिल्लाता, मना करता नौकर। इन्स्पेक्टर की इस हरकत से हैरान खण्डालावाला गुस्से से कांपता हुआ खडा हो गया।

"ह्वाट डज इट मीन ! (इसके मानी क्या ?)" उसने डाँट कर पूछा—"बिना बुलाए हमारी प्राइवेट पार्टी मे तुम कैसे घुस आये ? बाहर जाइए ! जाओ ! मैंने तुम्हें बरखास्त किया !"

"मुझे बरखास्त कर दें, मार डालें," विक्टर ने कहा—"पर मेरी बातो पर एतबार करें। दस दिन पहले मैंने कहा था, नेताओ के विरुद्ध घातक षड्यन्त्र चल रहा है—और आप महज हंस दिए थे, मुझे गपोड़शख मान कर। मैं कहता हूँ आज ही कल मे महात्मा गाधी की जान पर हमला होने वाला है। यह सूराग नागपुर जबलपुर-ग्वालियर की खाक छानने के बाद मुझे लगी है और झूठ नही है। आप कम से कम अभी टेलीफोन कर दिल्ली

की पुलीस को 'एलर्ट' तो कर दें।

"तुम जाओ। उपदेश हमें न दो।" सी० आई० डी० सरदार खण्डाला-वाला तमका—"सिखाओ मत मुझे! तुम इन्स्पेक्टर होने काबिल नहीं, 'कुक' हो, खयाली खिचड़ी पकाने वाले। होने दो कान्सपिरेसी, मरने दो मरने वालों को—मैंने किसी की जान का ठेका नहीं लिया है। भागो यहाँ से। मेरा नशा खराब न करो। मेरा नशा खराब होता है। कह दिया।"

इन्स्पेक्टर आर्त्त मुंह बनाये सर झुकाकर बाहर चला गया। दौर फिर चला। ज्योतिषी ने पुन: भविष्यवाणी की—

"125 वर्ष के होने के पूर्व महात्मा जी मर ही नहीं सकते। मरेंगे तब जब शनि में शनि का अन्तर और अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तर होगा। श्लोक तत्सम्बन्धी प्रमाणिक यह है—"

क्रूर ग्रहदशा काले
क्रूरस्यान्तर दशाग में
मरणम तस्य जातस्य
भविष्यति न संशयः

"मैं कहता हूँ, महात्मा जी की चिन्ता सरकार करे—" मोडे ने राय दी।

"सरकार कुछ भी नहीं कर सकती"—खण्डालावाला तीखा बोला—"गांधी जी की चिन्ता परमात्मा ही करे जिस पर महात्मा भरोसा करते हैं, पुलीस, सेना पर उनका विश्वास नहीं, विदित बात है।"

"उनका विश्वास," यूरोपियन, खामखयाली पत्रकार प्रमोद ने असन्तुष्ट भाव से कहा—"दुश्मन मारे, तुम दया दर्शाओ, आग लगा दे तो तुम प्रेम बरसाओ, बच्चे हलाल करें, औरतें उड़ा ले जायं पर तुम अहिंसक बने रहो, विश्व-प्रेमी। गांधी जी ने कान्फरेन्स में ही कहा था कि वह भारत राष्ट्र को ऐसा तैयार करना चाहते हैं जिसका एक-एक बच्चा मौके पर विश्व कल्याण के लिए आत्मबलिदान कर सके। राजनीति पाँच गाँव-सुई की नोक बराबर जमीन भी दुश्मन को देने को तैयार नहीं; फिर अपना चचेरा बड़ा भाई या राजा युधिष्ठिर ही क्यों न हो।—महात्मा जी सारा राष्ट्र कुर्बान करने को तैयार!"

"यह चर्चा ही अप्रिय," खण्डालावाला ने कहा—"हमें एक बार फिर सुकरात के मैखाने वाली चर्चा पर आ जाना चाहिए। ग्रीक महापंडितों की उस पार्टी में से एक ने तो प्रेम की परिभाषा बतलायी काबिले तारीफ़—उसके मन से युगों पहले स्त्री-पुरुष एक ही शरीर गोल-मटोल, चार भुजाएँ, चार ही चरण और दो मुख—बड़े मजबूत—बड़े तेज—बड़ी दिग्विजयिनी-जाति नारी नरों की ऐसे दीदेदार कि एक बार स्वर्ग पर कब्जा करने की तबीयत उनकी हुई! इस पर घबड़ाकर देवराज ने तय किया कि क्यों न इन्हें काटकर दो कर कमजोर कर दिया जाय। और देवराज ने वही कर दिखाया जो निश्चय किया। तभी से नर-नारी अपनी कमजोरी पहचान कर एक दूसरे में घुल-मिल जाने की कोशिश करते हैं—इसी मिलन का नाम है प्रेम। हा हा हा हा!"

"प्रेम की महर्षि सुकरात ने क्या परिभाषा की?" ज्योतिषी ने पूछा।

"सुकरात ने कहा," मोड़े बोला कि—"आप लोग जैसे विद्वान वक्ताओं की प्रचण्ड प्रेम परिभाषाओं के आगे मेरी मति मूढ़ हुई जा रही है। क्या बोलूं? मेरी समझ में आदमी को देवता बनने की इच्छा का नाम ही प्रेम है। प्रेमी सौन्दर्य खोजी ही नहीं सुन्दरता का सर्जक भी है, उसे शाश्वत रूप देने का अभिलाषी, मरणशील शरीर क्षेत्र में अमरता का बीज वपन करने वाला। स्त्री और पुरुष एक दूसरे को रमण कर आत्मा को स्वरूप देते हैं और इस तरह अपने अमरत्व की शृंखला अनन्त के छोर तक पहुँचाते हैं। यही कारण है कि आदमी बच्चे ही नहीं शाश्वत सौंदर्य की तलाश में अपना संगी, सहकारी, उत्तराधिकारी भी पैदा करता है। और क्या है वह सौंदर्य जिसे शाश्वत रूप देने के लिए हम जन्मते-मरते हैं? वह है सद्विवेक, सद्गुण, सुशक्ति, सम्मान, न्याय और विश्वास। एक शब्द में 'सुंदरम्' का अर्थ है 'सत्यम्' और सत्य ही परमात्मा के पदों तक पहुँचाने वाला सन्मार्ग है।"

"इसमें नया क्या कहा सुकरात ने?" ज्योतिषी जी चहके—"हमारे यहाँ लाखों बरस पहले कहा गया था—आत्मा वै जायते पुत्र। पिता का आत्मा पुत्र, उसका आत्मा उसका पुत्र, इसी तरह एक ही अनेक रूप में—ओर छोर हीन। सत्य शाश्वत जो ऋषियों ने कहा वही सुकरात ने कहा

और वही कहते हैं महात्मा गांधी।"

"लेकिन ऋषियों की बातों मे फोर्स ज्यादा था," पत्रकार ने राय दी—"वह सोमरस पीने के बाद ही कुछ बोलते थे। गांधी बिना पिये ही कहते है—अरे सोमा, सोमा ?"

सोमरस की याद आते ही मेजवान प्रदीप को स्मरण आया कि बातो के बतगड में मेहमानो ने अभी कुछ खाया नही। सोमा ने सामने आकर सलाम किया—

"अरे बापू।" शराब के नशे में मालिक नौकर ने ही मज़ाक कर चला—"कुछ खाना-वाना भी तैयार है या हमारी तरह तू भी बिना पिये ही शाश्वत सत्य की तलाश मे था ?"

"तैयार है हुजूर।"

"क्या तैयार है ? कितने बजे ?"

"ठीक पांच बजे हैं," "यह भी कोई खाने का वक्त !" मोड़े अभी पीना ही चाहता था—"पीते वक्त खाना पेटूपन है वह जिसमें नशे की मस्ती का मज़ा ही नही आता।"

"अरे अब तो कृपा करो देशभक्त जी," दैवज्ञ ने ताना दिया नेता को—"इस वक्त महात्मा जी दिल्ली मे प्रार्थना करते होंगे।"

"प्रार्थना में मेरा विश्वास नही"—मोड़े ने मदम्भ कहा—"राजनीति और धर्म का गुड गोबर-घोल देश की वर्तमान अवस्था मे घातक होगा। राजनीति राजनीति है, धर्म धर्म। सबसे प्रेम ही कीजिये, दण्ड को चूल्हे में जलाकर साग उबालिये, साथ भी रखिये, लकडी भी, किसान रखिये, जमीदार भी; मजदूर रखिये, मालिक भी। चल चुकी यह व्यवस्था। टिक चुका यह स्वराज्य। प्रार्थना प्रार्थना। जब पालिटिक्स की जरूरत तब प्रार्थना से क्या होगा ?"

"प्रार्थना की रेडियो रिपोर्ट सुनें," ज्योतिषी रेडियो की मेशीन की तरफ झपटा, किंचित लड़खड़ाता—"कभी-कभी भजन अच्छे गाये जाते हैं। किस मीटर पर दिल्ली बोलता है ?"

"आपके रेडियो सेट की किस मीटर पर दिल्ली स्टेशन है ?" पत्रकार ने पूछा—

"मैं," ज्योतिपी ने मंजूर किया—"मीटर सेंटीमीटर की माया मे न पड़ रेडियो की मेशीन की मूठ घुमाता जाता हूँ और कहाँ से दिल्ली बोलती है कहाँ से वम्बई, मुझे मालूम नहीं।"

"30 मीटर पर सुई लगाइये।" खण्डालावाला ने रेडियो ज्ञान दिखाया। दैवज्ञ ने वैसा ही किया, मेशीन मे साँय-साँय स्वर भरने लगा पर—पर आवाज नही आयी।

"मारो गोली प्रार्थना में !" नेता मोड़े ज्योतिपी पर तन्नाया, "मजे के वक्त खलल की बातें न करो। देश के दो टुकडे हो गये, शान्ति के सौ टुकडे और हमारे नेता प्रार्थना ही करते रह गये। सर्वस्व लुटा जा रहा है, हम प्रार्थना कर रहे है। बन्द करो ! चलो इधर !"

"चलो इधर ! चलो इधर !!" तीनों ने ऐसा ललकारा कि ज्योतिपी रेडियो छोड टेबुल पर चला आया। पारसी ने कहा—

"प्रार्थना चाहे जब हो, हम तो दोपहर से ही प्रेम-चर्चा कर रहे हैं।"

"मगर चर्चा आपकी रही पछाँही प्रेम की," ज्योतिपी ने कहा, "सुकरात याद आये श्रीकृष्ण याद नही, भारतीय कवियो की प्रेमोक्ति किसी ने न सुनी।"

"एक शेर कहो तो मैं सुना दूँ।" पारसी ने कहा—"पर खाना ठण्डा हो रहा है, पुलाव-कवाव का दम निकला जा रहा है, रोगनजोश ठण्डा पडा जा रहा है। पहले खा लिया जाय, फिर प्रेम-चर्चा हो।"

"पहले शेर सुनाओ।" मोडे ने आग्रह किया।

"पहले शेर।" प्रदीप ने समर्थन किया।

खण्डालावाला सुना चला—

"हम तर्जे इश्क से तो वाकिफ नही हैं लेकिन···"

और पत्रकार के साथ मोड़े ने दुहराया—

"हम तर्जे इश्क से तो वाकिफ नही है लेकिन···

खण्डालावाला—

"सीने मे जैसे कोई दिल को मला करे है।"

वाह-वाह, वाह-वाह की धूम मच गयी। पर ज्योतिपी जी न हिले—

"किसका शेर है ? सचमुच वह तर्जे इश्क वाकिफ नहीं। सीने में जैसे कोई दिल मल रहा है, इसमें 'मल' है, स्वच्छ दर्शन नहीं।"

"यह शेर 'मीर' का है और बहुत बढ़िया है," खण्डालावाला ने दावा किया—"पर उससे भी बढ़िया है उस्ताद ग़ालिब का यह शेर—

'इश्क मे तबीयत ने जीस्त का मज़ा पाया।

दर्द की दवा पायी दर्द बे दवा पाया'।

"यह शेर शेर है," दैवज्ञ समझता था—"ज़ीस्त का मज़ा, दर्द बे दवा—निहायत बढ़िया शेर यह है। फिर से कहिए।"

"अब आप कुछ फर्माइये," पारसी ने पण्डित से कहा—"ज़रा अपने प्रेम की बानगी पेश कीजिये।"

"मुझे तो कुछ याद नही रहा"—ज्योतिषी बोला—"हाँ कबीरदास ने कहा है कि—

'एक मेक होई सेज न सोयी तब लगि कैसो नेह रे !' "

प्रियतम से एक होना ही प्रेम की सफलता—प्रेम मे दुई ना काबिले बरदाश्त—

'प्रेम गली अति साकरी यामे द्वै न समाई।"

प्रमोद ने आलोचना की—

"उर्दू की तरह हिन्दी कविता मे जोश नहीं।"

"हिन्दी कविताएँ जोश नही, होश मे लिखी गयी है।" पण्डित ने पक्ष लिया हिन्दी का।

"मगर उर्दू कवियों की बेहोशी भी बडी होशियार—प्रेम पर 'नज़ीर' का कलाम है—

"दिल अपना भोला-भाला है।

और इश्क बड़ा मतवाला है॥

क्या कहिए और नज़ीर आगे।

अब कौन समझने वाला है।"

"वाह-वाह !" मोड़े ने लपक कर पारसी के दोनों गाल चूमते-चूमते काट खाया।

"अरे साला !" चिहुँका खण्डालावाला—"मैं माशूक नहीं !"

"बस भाई !" पत्रकार ने कहा—"प्रेम की इसी गर्मी में पोलाव पर मुँह मारिये ! बिसमिल्ला: !"

"बिसमिल्ला: !" पारसी ने प्रतिध्वनि की।

"ॐ तत्सत् !" गर्ज कर ज्योतिषी ने कहा और हड्डीले मास का एक टुकड़ा माथे से लगा कर मुँह तक ले गया। अभी भी किसी का नेवाला गले से नीचे उतरा न था कि रेडियो रो पड़ा—

"यह दिल्ली है !"

"प्रार्थना का रिले !—सुनिए !" पण्डित प्रसन्न बोला।

"मारो गोली !" पत्रकार ने तिरस्कार से कहा।

"—गोली मार दी गयी महात्मा जी को !"—रेडियो से आवाज आयी।

"झूठ बात !" सबका ग्रास मुँह से बाहर निकल आया। मगर रेडियो बोलता ही रहा अशुभकारी स्वर में—

"प्रार्थना के लिए जाते हुए राष्ट्रपिता को, नाथूराम विनायक गोडसे नामक महाराष्ट्रीय नौजवान ने पिस्तौल से चार गोलियाँ फायर कर शहीद बना दिया।"

आज़ादी से आठ दिन पहिले

खण्डवा से बम्बई मैं रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठा रहा हूँ। अगस्त 47 के दूसरे सप्ताह के आरम्भ मे बम्बई इसलिए पहुँच रहा हूँ कि 15-16 अगस्त को हरेक तमाशा पसन्द आदमी को दिल्ली या बम्बई मे होना ही चाहिए। ऐसा तमाशा सदियो सहस्राब्दियों में भी देखने को सहज नही मिलता।

गाडी का डिब्बा सोलह सीटर जिसमें से—मेरे बैठते वक्त—बाहर निकलता कोई क्रिस्तान परिवार—, 12, 14, 16 वर्ष की तीन स्वस्थ लड़कियाँ, तगड़ी माँ, पाया प्लेटफार्म पर।

"आओ जल्द नीचे !" पिता ने परिवार को प्लेटफार्म पर से पुकारा। लड़कियाँ लपकी भी—उसी उजलत से जिससे हम लोग ट्रेन मे घुसते या बाहर निकलते है—अभिभूत होकर। मगर माँ साहब मज़बूल—

"ठहरो, पहले सामान बाहर उतर जाने दो !"

मेम साहब के हुक्म से कुली ने इस सावधानी से डिब्बे की सीटों को साफ़ किया कि मेरा विस्तर भी ले जाते-जाते बचा !

(2)

ट्रेन चलने पर चारों ओर की परीक्षा से प्रकट हुआ—डिब्बे में कुल पाँच आदमी। एक मुसलमान फौजी, एक हिन्दू और एक ही सिख। मेरे सामने बैठे खण्डवा के एक उग्र सोशलिस्ट बातें करते धारावाहिक। नमक खा, पानी पीकर कोसते—

"ये राष्ट्रीय अपने को कहते हैं, कहते है स्वराज्य ले लिया—अजी उग्रजी ! ये डरते हैं क्रान्ति के दाहक दावानल से। स्वराज्य होगा ? हुँ !

बिना युद्ध न कहीं कुछ हुआ है। कांग्रेस हाईकमाण्ड अंग्रेजो से डरता है—तभी तो स्वराज्य हो जाने पर भी जिस विभाग को देखो उसी का 'हेड' गोरा!"

"बहुत-सी बातें अभी हमें अंग्रेजों से सीखनी होंगी कि नहीं!" मैंने कांग्रेस रुख के समर्थन में कहा।

"कुछ भी अंग्रेजो से नही सीखना है।" ताव से तमक कर दोस्त सोशलिस्ट ने कहा—"हममें योग्य जिम्मेदार आदमियों की कमी नही। फिर लार्ड माउण्टबेटन ही आज़ाद भारत के गवर्नर जेनरल क्यो चुने गये? अजी हमें आदत पड़ गयी है दादा—चाचा-ताऊ की अँगुली पकड़ कर चलने की।"

"लार्ड माउण्टबेटन ही पहले गवर्नर-जेनरल क्यों चुने गये? यह सवाल जब कुछ लोगों ने हमारे एक भड़कने वाले महानेता से पूछा तो उन्होंने क्या जवाब दिया था—आप भूल गये? उन्होने कहा था—लार्ड माउण्टबेटन इसलिए चुने गये हैं कि उन जैसा योग्य और विश्वस्त आदमी इण्डिया मे नहीं है।" मैंने पुन: कांग्रेस पक्ष ग्रहण किया।

"इसे कहते है आत्महीनता या 'इनफीरियरिटी काम्प्लेक्स'। इसे कहते हैं 'गुलाम मनोवृत्ति'। बहुत बिगडे सोशलिस्ट भाई—"इण्डिया में विश्वस्त आदमी नही! फिर यह आज़ादी की लडाई क्या बेईमानों की सेवा से जीती गयी है? असिल बात वैसी ही जैसे दो लडके एक ही गुलाबजामुन पर लड़ते है, अन्त मे उसे स्वयं न खा कुत्ते को दे दें—पर पड़ोसी मित्र को नही! जब तक हम इस मनोदशा में है हरगिज आजाद हो नही सकते।

"फिर ये कांग्रेसवाले अब बूढ़े पड गये, पुराने। आगे ज़माना सोशलिस्टों का है जिनके पास सेना है, लाखों का सगठन है, अमूल्य, मूल्यवान प्राणो को मौके पर यज्ञ में आहुति की तरह होम देने की हौस है। पचास हजार हम लोग बरार विजय के लिए यवतमाज जा रहे है। फलां तारीख को निजाम पर चढाई कर उसे हम मसल कर रख देंगे, हम सोशलिस्ट है—क्रान्तिकारी। हमें साग-भाजी भक्त अहिंसक गाधीवादी कोई न समझे।"

अगले स्टेशन पर सोशलिस्ट भाई अपना दल संभालने नीचे उतरे

और टिकट चेकर आया। आते ही उसने शिकायत शुरू की—ये ही लोग काग्रेस और लीग दोनों को बदनाम करते हैं—दोनों ही से बुरे हैं। बिना टिकट पूरी पार्टी सफर कर रही है। पूछने पर कहते हैं हमारा कमाण्डर आगे की डिब्बे मे है—पर न कहीं कमाण्डर न अमाण्डर। ये जा रहे हैं वरार विजय करने। पूत के लच्छन पालने पर! यह मुँह और मसूर की दाल!!

(3)

मगर मैं भूला! डिब्बे में एक सज्जन और थे जो ऊपर की बर्थ पर मूँछें खडी किये, माथे पर मंडेहर की तरह पीला चन्दन छापे आराम फर्मा रहे थे। अगले स्टेशन पर जब आवकारी डिपार्टमेंट के सिपाही मुसाफिरो की जाँच करने आये तब उनकी उपस्थिति का अहसास मुझे हुआ। मेरे पास तो जाँचने काबिल कोई सामान था ही नही और दूसरे तीन यात्री पल्टनिये, सो, आवकारी वालो की नजर ऊपर वाले दोस्त ही पर तीव्रता से पहुँची—

"आप कहाँ जा रहे हैं?"

"नासिक······"

"इन गठरियो में क्या है? क्या है इस डिब्बे में?"

"गठरियो में आटा, चावल, दाल है और डिब्बे मे घी।"

"तुम जानते नही आजकल राशनिंग और कण्ट्रोल का जमाना है? आटा, चावल, दाल एक जगह से दूसरी जगह ले जाना गुनाह है।"

"मगर जमादार, मैं भरतपुर से आ रहा हूँ। नेमधर्म से रहने वाला—पितरों की प्रीति के लिए तीर्थ दर्शन को निकला हूँ। इस कण्ट्रोल के जमाने में तीर्थयात्री अगर सामान लेकर नही चलेगा तो खायेगा क्या? ये तो जीवन की परम आवश्यक वस्तुएँ है फिर ज्यादातर चीजें मुझे जजमानों से मिली हैं।"

"बातें बहुत मत बनाओ पंडत!" आवकारी वाले जमादार ने बातें बनायी।

"जजमान तो तुम्हे पाँच सेर तवाकू दे सकता है, सेरो अफीम, गाँजा, भंग, चरस, बोतलों दारु, पर तुम कानून तोड़ कर ऐसी चीजें पीठ पर लाद

अलानियाँ चल-फिर नहीं सकते।"

"जमादार," गिड़गिडाया तीर्थ यात्री—"अब आटा, चावल, दाल-अफीम, गाँजा, शराब, बन गयी !!"

"इसका जवाब अगले स्टेशन पर तुम्हें उतर कर दिया जायगा।" आबकारी वाले दूसरे डिब्बे में जिसका रास्ता हमारे डिब्बे के बीचोबीच था—घुसे; पर उनका व्यवहार किसी को पसन्द नहीं आया।

(4)

भुसावल। स्टेशन वाले होटल के कई छोकरे डिब्बे के सामने—"खाना लाऊँ साहब ?"

"क्या ला सकते हो ?"

"राइस, चपाती, भाजी, दाल···"

"कीमत···?"

"महज़ अठारह आने···!"

लेकिन उस वक्त अपने राम को जरा भी भूख नहीं थी। मैंने कुछ भी मँगाने से इनकार कर दिया। पर हैदराबाद जानेवाले एक मुसलमान फौजी ने मांसाहारी भोजन के थाल का आर्डर दिया। थाल आने पर मैंने देखा उसमें एक गिलास पानी, एक-एक तोला आटे की दो बेचुपडी चपातियाँ, एक प्लेट में मास की 3-4 बोटियां और पके चावल कोई ढाई तोले, ऐसी होशियारी से फैलाये कि देखने में बहुत नजर आयें। थाल के साथ ही तीन भिखमंगे छोकरे भी आये और जब सिपाही खाने लगा तो छोकरे उसके मुंह-हाथ-थाल की तरफ बराबर गुरेरकर देखने लगे।

वे फटेहाल थे, अशिक्षित सर से पाँव तक, असंस्कृत शायद गर्भ ही से। सर पर टोपी नहीं, पाँव में नहीं जूते—तन पर भी कमीजें ऐसी जिन्हें देखकर घृणा भी नाक सिकोड़े। और वे भूखे उस सिपाही के भोजन को घूरते ही रहे।

घूरता मैं भी था—"माल कैसा है जनाब ?" मैंने पूछा। उसने बिलकुल निरुत्साह-सा उत्तर दिया—"ठीक है।"

"यह मटन (बकरे का गोश्त) ही है ?" सिख सिपाही ने सन्दिग्ध भाव से प्रश्न किया।

जुबान को छोड इसका जवाब दूसरे के पास नही। खानेवाला खाते ही पहचान सकता है कि मटन है या नहीं। उसका स्वाद ही भिन्न होता है। मगर लोभ के आगे ईमान के उठ जाने के सबब आज हर कहीं मिलावट नजर आती है। इसीलिए मैंने तो सफर मे कुछ न खाना ही उसूल बना रखा है।

भिखमगे भारत पर फिर मेरी नजर। तीनो अभागे छोकरे अभी तक सिपाही के गरीब खाने को घुरेरते ! अब मैं उन पर सदय बरस पडा—"अभागो ! तुम किसी को आराम मे खाने भी नही देते ! वह खा रहा है, तुम सब थाल मे आँखें घुसेडते बेशर्मी से खडे हो।"

तीनो अभागे मेरे तिरस्कार भरे शब्दों के धक्के से तीन-तीन कदम पीछे हट गये। *जैसे मेरी निर्मम बातें उनके सीने मे जगह कर गयी।* पर थे वे सचमुच भूखे। उपदेश के काल्पनिक बन्धन मे ससार के गभीरतम सत्य भूख को बाँधना आसान नहीं। तीन कदम दूर से हीं सही, रहे *मगर* वे खाते सिपाही को ही ताकते। सिपाही भी पूरा खाना ठंडे दिल से न खा सका। आधे चावल और थोडी कीमा शोरबेदार सबसे नजदीकी *भिखमगे* के लिए उसने बचा ही ली। छोटी प्लेट मे कीमे के साथ चावलो को मिला-कर उसने लड़के की तरफ बढाया—जिसने फटी कमीज का अगला भाग ऊँचा किया प्रसाद पाने के लिए—लेकिन शोरबा रसीला था, कमीज खराब हो जाती—सिपाही ने अजली मे लेने को कहा। कहा कहाँ, सारी बातें इशारो ही मे हो गयी।

भिखारी बालक घृणित जूठन से अंजली भर कर जब हमारे डिब्बे के आगे लपका—किसी सुरक्षित जगह पहुँच कर शान्ति से खाने के लिए तब दूसरे दोनों मक्खियो की तरह झपटे अपने तीसरे साथी की तरफ—

"जरा मुझे भी देना रे !" सबसे बड़े ने हिस्सा चाहा।

"एक जीभ मुझे भी चाट लेने दे ! देख तू मेरा भाई है सगा !" दूसरे *ने विनय की गिड़गिडाहट की;* पर जिसके हाथ मे प्रसाद था वह पसीजा नहीं। अंजली को चुल्लुओं मे बाँट दो बार मे सारी जूठन वह अकेले ही *चाट गया।*

मेरा सर चक्कर खाने लगा। शायद इलाहाबाद एक्सप्रेस बहुत

तेज-50-60 मील प्रति घण्टे की गति से दौड रही थी। मैं वम्बई जा रहा हूँ जहाँ आठ ही दिनों बाद आजादी का गौरवमय 'उत्सव' मनाया जाने वाला है।

आठ दिनों वाद जो आजादी हमें हासिल होगी उसे ये भिखमंगे कैसे याद रखेंगे ? ज़िन्दगी अपनी जो इस रग से गुज़री 'गालिव'—हम भी क्या याद करेंगे कि खुदा रखते थे।

एक वजे रात किसी स्टेशन पर नीद खुली तो नशा उतर चुका था और भूख भरपूर चढ आयी थी। केलेवाला आवाज लगाता चला गया। रात मे भला केला क्या खाना ? चनेवाला निकला, पर ऐसे वक्त चने खाने से ये सोते हुए सहयात्री क्या समझेंगे ! फिर चाय—मगर चाय मे भी क्या दम जो भग की उतार की भूख को रोक-थाम कर सके। मैं कुछ भी निश्चित न कर सका। कुछ लेकर खाने के इरादे से जेव से निकाले दस आने पैसे मुट्ठी की मुट्ठी ही में दवे रह गये। मगर; भूख कही मानती है। भिखारी छोकरे ने किस जोश मे उमड़ कर जूठन को खाया था ! आखिर मैं क्या खाऊँ अव ?

"गरम मीठा दूध !" मीठी आवाज सुनाई पड़ी। डूबती आशा को किनारा नजर आया।

सामने आकर रुका चौदह साल का एक छोकरा—सर पर पुरानी फेज टोपी ! पर अभी भी मैं 'ब्राह्मण' हूँ—देखो तो ! पर भूख मुसलमान-हिन्दू का भेद कव समझती है। भखही में तो उस अभागे भारतीय वालक ने जूठन खाई—हाय रे !—उसने सोचा होगा—इसमें क्या हर्ज है ? मैने सोचा दूध मे क्या बुराई हो सकती है ? दो आने कप की दर से एक कप देने के लिए दूधभरे डिव्वे को उसने हिलाया। पूरा नही, पौन प्याला उसने मुझे दिया। प्याला कांच का—मुसलमानी-रुचिरंग का था। मुंह से लगते ही मालूम पड़ा कि न तो वह गरम था और न 'दूध' ! अरारोट या मीठे आटे का शरवत ! मन मचलाने लगा, मगर फिर भी भूख लगी थी—कोई दूसरा चारा था कहाँ ?

इतने मे प्याले से खिचकर कोई आधे इंच की वाँस की फाँस या काफी

मोटा तिनका मेरे मुंह में जुवान ने 'डिटेक्ट' दिया। मरने के डर से गले के नीचे उसे जाने नहीं दिया, मगर, मुंह को दूध उगल देने की सलाह भी जुबान ने नहीं दी—भूख जो लगी थी। मैं मुंह बन्द किये तिनके को दाँतों के निकट दबाने की कोशिश में गम्भीर होकर दूध गले के नीचे उतारने लगा। लड़के ने भी ताड़ा कि कोई दिक्कत दरपेश है। उसने सोचा, गाहक यह जांच रहा है अरारोट के टुकड़े मुंह में चबाकर कि दूध है या कुछ और। आध इंच के तिनके से बेखबर उसने कहा—

"मलाई है, हुजूर मलाई।"

टाम, डिक, हैरी एण्ड कम्पनी लिमिटेड

टाम अंग्रेज, डिक फ्रेञ्च और हैरी अमेरिकन—युक्त प्रदेश के रंगपुर शहर में उक्त तीनों ही शैतान से मशहूर या बदनाम विदेशी। 30 वर्ष पहले जब तीनों विदेशियों ने रंगपुर मे टाम-डिक-हैरी प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी खोली तब तीनों राष्ट्रों के मानव होने पर भी उद्देश्य उनका एक था—काले लोगों का सुफेद धूर्तता से शोषण, दोहन।

इनमें अंग्रेज टाम रंगपुर का सबसे पुराना विदेशी था जिसकी शराब की एक दूकान थी और होटल, बार और बिलियर्ड का सामान। टाम के दादा ने सन् 57 मे एक ब्रिटिश सैनिक टुकड़ी के कप्तान की हैसियत से रंगपुर में भयानक से भयानक जुल्म कर, अमीरों को खास और जनता को आम तौर पर लूटकर बड़ी रकम जोड़ ली थी। इतनी कि गदर शान्त होने के बाद सैनिक जीवन छोड शराब की दूकान और होटल खोलकर वह रंगपुर में मुनाफेदार रोजगार करने लगा था; जिसमें डिक और हैरी बाद में आकर शामिल हो गये थे और तभी—"टाम, डिक, हैरी एण्ड को' नाम की प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी कायम की गयी थी।

कम्पनी का उद्देश्य था येन केन प्रकारेण रंगपुर शहर और आस-पास के गाँवों का आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक सर्वनाश कर उन्हें मानसिक, शारीरिक और व्यावहारिक दास गुलाम बना देना। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और गोरी चमड़ी की कृपा और रंग-रोब से उक्त कम्पनी ने तीस ही सालों में जो जबरदस्त कमाई की उसकी गणना सुनकर दुनिया के बड़े-बड़े धनपति भी दाँतों अंगुनी दाब लें। दस-दस करोड़ रुपये एक-एक हिस्सेदार के हिस्से पड़े!

यह तो नकद बँटे मुनाफे की चर्चा है। इसके अलावा सारे प्रान्त में कम्पनी का विज्ञापन, शहर में आधी दर्जन बडी-बडी दूकानें, तीन-तीन मिलें और सारे जनपद के खेतों की उपज पर 99 साला कब्जा। रंगपुर और आसपास की ज्यादातर पैदावार कपास की जिस पर टाम-डिक-हैरी क० का सर्वाधिकार परमावश्यक उन तीनो काटन मिलों के सबब। इस तरह किसान और मजदूर दोनो ही कम्पनी के मायापाश से बँध गये।

रंगपुर शहर आसपास और सारे प्रान्त का शोषण टाम-डिक-हैरी कं० न कर पाती यदि चोर-चोर मौसेरे, नाम की ब्रिश्चियन, ब्रिटिश सरकार उनसे मिली न होती। गरीब भारतीयों को लूटने मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एक बार जो ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने मदद दी, सो फिर रुकी नही। भले ही भारत का शासनसूत्र आगे चलकर कम्पनी से ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने लिया हो, पर कम्पनियाँ तो बराबर इस देश में बढ़ती ही रही। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को जो मुनाफा हुआ उसे तो बहुत लोग जानते हैं पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बाद जो कम्पनियाँ भारत मे कायम हुई उन्होंने कितने अर्व-खर्व का दोहन किया उसका पता शायद ही किसी को हो।

रंगपुर शहर की टाम-डिक-हैरी कम्पनी ही को लीजिए। कौन-सा ऐसा पाप, अत्याचार-अन्याय होगा जो कम्पनी वालों ने करोडो जनता पर न किया हो। हमारे प्रियतम देश के रुपये अंग्रेज या गोरे लूट ले गए इसका उतना गम नही जितना कि उनके द्वारा हमारे अपनेपन, हमारी संस्कृति, हमारे बुजुर्गों द्वारा निर्धारित रीति-नीति नष्ट किए जाने का है। मि० टाम के होटल, शराबखाने और विलियर्ड की बातें तो आपको मालूम ही हैं, अब फ्रेंञ्च गोरे डिक की गुणगाथा सुनिए। उसने तरह-तरह की मिथ्या आकर्षक फैशनेबुल चीजों को अपने देश से मँगाकर रंगपुर ही नही सारे प्रान्त के बाजारो को पाट दिया। कौन की चीजें, इत्र वगैरह, पाउडर-पेस्ट-लिपस्टिक, तरह-तरह के सूट-बूट, हैट टाइयाँ, सिगार, सिगरेट के प्रचार का परिणाम यह हुआ कि आत्मा का पुजारी देश, परमात्मा का प्रेमी प्रान्त शरीर का भक्त और राम से विभक्त हो गया।

जो सात पुश्तो से सादा जीवन बिताने के आदी थे वे ही अब जिसका

गाँवों में घुस गये अंग्रेजी सेना के साथ और दनादन गोलीबारी कर आजाद होने के लिए आतुर भारतीयो को भूनने लगे। चन्दन नामक गाँव तो टाम-डिक-हैरी की निगरानी ही में तबाह किया गया और सो भी किस दानवी ढंग से जिसकी याद से भी रोमांच हो उठता है।

ब्रिटिश टामियों की एक टुकड़ी के साथ कम्पनी वालों ने पहले तो चन्दन गाँव को घेर लिया। फिर एक-एक कर घर मे घुस सारे मर्दों को बँधवा लिया, फिर सबका मालमता लूट कर सारे गाँव की अबलाओं पर बलात्कार किया गया और संगीनो पर खोस कर कोमल बच्चों की लाशें गाँव मे घुमायी गयी। इसका नतीजा यह हुआ कि ब्रिटिश सरकार के भारत छोडने का निश्चय करने पर भी रंगपुर वालों के मन की धारणा कम्पनी वालो के विरुद्ध गयी नही। सारे शहर ने एकमत हो प्रस्ताव किया कि टाम-डिक–हैरी कम्पनी वाले विदेशी भी विदेशी सत्ता के साथ ही रंगपुर से मुँह काला करें। लेकिन ये विलायती गोरे बड़े अवसरवादी। 42 के भेड़िये 47 की जुलाई में भेड़ से नजर आने लगे। कम्पनी ने देशी कर्मचारियों की तनखाहें बढ़ा दी, बोनस बाँटे, बीती ताहि बिसार कर भविष्य में मिल-जुलकर व्यापार करने की अपील निकाली, पर जिनके घर उजड़ गये थे, माँ-बहनें बेइज्जत हुई थी, भाई शहीद हुए थे, कम्पनी के कटैल कुत्तों ने साम्राज्यवादी जोश से भर जिनके जीवन को क्षत-विक्षत कर दिया था वे फिर गोरों की व्यापारिक मुस्कराहट मे फँसे नही। महात्मा जी के प्रति अगाध सम्मान रगपुर वालो के मन मे न होता तो इसमे जरा भी शक नही कि कम्पनी के आततायी भागीदार और कर्मचारी जिन्दा जला दिये जाते।

और आया पन्द्रह अगस्त। और आयी शहीदों के लहू की मेहँदी रचे आजादी। सारा देश, सारा जनपद उत्साह और उत्सवमय हो उठा। बम्बई मे चार दिनो तक खुशियाँ मनायी गयी। अन्य शहरो मे तीन दिनों तक; लेकिन हमारे रंगपुर में तो पूरे सप्ताह धुआधार धूमधड़ाका बना रहा। लाख दुःखों के बाद भी आजादी मिलने की खुशी हिन्दुस्तानियों के मन में फूली-फैली समा नही रही थी।

बाजार की हवा के साथ रुख बदलने में उस्ताद टाम-डिक-हैरी ने भी

आजादी दिवस कम घूमधाम से नही मनाया। टाम ने शराबखाने को खद्दर से सजाया, डिक ने बदनाश विलायती छोकरियों को तिरंगे जैकेट पहनाये और हैरी के सिनेमा हाउस की ऊँची खोपड़ी पर इण्डिया का राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया। झण्डा फहराया कांग्रेस कमेटी के देशभक्त अध्यक्ष ने और खद्दर के चूड़ीदार पाजामा, अचकन और जवाहर टोपी पहनकर टाम-डिक-हैरी तीनों ने नगरवासियो को एक पार्टी देकर प्रसन्न किया। आज़ादी मुबारिक ! आज़ादी मुबारिक के नारे लगाते-लगाते तीनों के कण्ठ सूख गये। उन्हें विश्वास हो गया कि रंगपुर के बुद्धू इण्डियन उनके जुल्मो को भूल गये, एतबार हो गया कि आगे भी पुरानी आसानी से वह इण्डिया का दोहन शोषण कर सकेंगे। इसी वक्त आये मिलिटरी मार्च करते कोई एक दर्जन शस्त्रधारी भारतीय नौजवान। आते ही झपट कर सैनिकों ने टाम-डिक-हैरी को घेर लिया—

"What's it ?" टाम ने किसी से न पूछ सबसे पूछा।

"हम खुश है तुम्हारी आज़ादी से फिर तुम हमें छेड़ते क्यो हो ?" फ्रेञ्च डिक ने कहा।

"मैं कहता हूँ," अमेरिकन हैरी ने बहुत ही नम्रता से कहा।

"आज़ाद होने पर भी आपको हमारे कॉलिजो की जरूरत तो पड़ेगी ही, सिनेमा तो देखेंगे ही। आज़ाद लोग ही खाते-पीते हैं इसलिए टाम की होटल में स्वतन्त्र आदमी ही मजे या और ले सकता है। अतएव डिक का रूपसियों से भरा स्टेबलिशमेण्ट फैशन का सामान। मैं दावे से कहता हूँ पुराने मित्र होने के सबब, हम आपसे सस्ता व्यापार करेंगे। आप विश्वास करें।"

"मगर हम रंगपुर शहर के नागरिक," कांग्रेस अध्यक्ष ने ऊँचे स्वर मे कहा—"गोरे नीच स्वार्थी आततायियों का विश्वास उनकी पैशाचिक रुचि देखने के बाद अब हर्गिज नहीं कर सकते। हमें तुम्हारी एक भी चीज नही चाहिए। न शिक्षा, न सिनेमा, न सूट और न शराब। हमारी और तुम्हारी भी कुशल अब इसी में है कि अपनी दुकानें बढ़ा तुम लोग अपने-अपने देश को रवाना हो जाओ। चलो···!"

बाहर बड़े-बड़े मोटर-ट्रक खड़े थे। विशेष हाँ—ना की नौबत क्यों

आवे इसलिए सैनिकों ने बरबस उठाकर मेसर्स टाम-डिक-हैरी को लारियों पर लाद दिया, फिर टुकडी के कप्तान ने आज्ञा दी—

"बम्बई ले जाओ !"

तीनों गोरों के पीछे टाम-डिक-हैरी कम्पनी की सारी सामग्री भी अच्छी तरह से पैक कर बम्बई रवाना कर दी गयी। याने ख़सकम, जहाँ पाक हो गया।

झाऊलाल

आखिर इण्डिया आजाद हो गया। इण्डिया चिरजीवी हो। इस तरह आज दुनिया का बहुत पुराना, बहुत ही सस्कृत मुल्क, भौतिक स्वतन्त्रता बहुत दिनो बाद पा रहा है।

पा रहा है के माने यह नही कि ब्रिटेन खैरात दे रहा है और इण्डिया पा रहा है। भारतवर्ष की यह स्वतन्त्रता किसी की कृपा का फल नहीं, हिन्दुस्तानियो की शहीदाना तपस्या का नतीजा है।

तपस्वी तो पूर्व और विशेषतः भारत के लोग सदा से होते रहे हैं। युगों से वे सच्चिदानन्द के साधक रहे, याने अन्दरूनी परिष्कार के प्रेमी। इण्डिया वालों की भौतिक या मैटिरियलिस्टिक साधनो के लिए शहीद होना योरुप वालों ने, खासकर साम्राज्य के प्यासे ग्रेट ब्रिटेन ने सिखाया। परमात्मा के लिए जर और घर दोनों ही का त्याग करने वालों को जर और घर दोनों के लिए परमात्मा तक को ललकारने की मन-स्थिति में लाकर अंग्रेजों ने पटक दिया।

सो, आज का इण्डिया धम्मं शरण गच्छामि ! कह कर आततायी के आगे गर्दन झुका देने वाला बौद्ध भिक्षु या श्रावक नही, वह देवप्रिय दिग्विजयी सम्राट अशोक की तरह बलशाली, साथ ही धर्म-नीतिप्रिय ओज है। इण्डिया आज स्वतन्त्र विश्व के निर्मल नीलाकाश मे दिव्य तेजस्वी सतरगे इन्द्रधनुष की तरह गगनव्यापी है।

हिमालय का यह पड़ोसी अपने शुभ महत्त्व को आज महसूस कर रहा है। गंगातट का यह निवासी सचमुच आज पवित्रता से पुलकित है। कहते हैं ऐसी आजादी इसे युगों बाद मिल रही है। युगो तक बाहरी वस्तुओं से

उसे अनुराग नही था। कूटनीति भरी राजनीति को इण्डिया वाले युगों तक अधर्म मानते रहे। आज भी देश के सबसे बड़े नेता गांधी जी महात्मा है, साधु है, कूटनीति को अधर्म मानने वाले है, मनुष्य मात्र को आत्मवत् समझने वाले !

बडा कूटनीतिज्ञ था कभी कौटिल्य चाणक्य। चन्द्रगुप्त को बुद्धि के डंडे मे झण्डे की तरह झुलाता सारी जिन्दगी वह सम्राट का अभिन्न मन्त्र-दाता रहा। मगर, रहा हमेशा साधु की तरह, साम्राज्य चरणों के नीचे होने पर भी मतलब रहित। कुटी में रहने वाला सचय हीन। आज के कूटनीतिज्ञ और उनके जीवन के ऊँचे स्टैंडर्ड से भारतवर्ष के तपोजीवी, श्रमजीवी ऋषियों के उच्च विचारो की तुलना बहुत मुश्किल है।

सो, इण्डिया स्वतत्र हुआ। आज वह सांस ले रहा है ब्रिटेन के दानवी चंगुल से स्वय मुक्त। जरा दम तो इस महादेव को ले लेने दो ! फिर तो, मैं भविष्यवाणी कर सकता हूँ, इण्डिया एक बार संसार को स्ववश करके रहेगा। वही काम जल्द ही भारतवर्ष करेगा। जो अलेक्जेण्डर, चंगेजखान, नेपोलियन, कैसर जार, हिटलर न कर पाये और स्टालिन, ट्रूमैन, चर्चिल लाख जोर मारने पर भी जो नही कर पा रहे है।

युगों से आन्तरिक मुक्ति के लिए खपने वाला यह देश आज बाहर से भी मुक्त है। ऐसे हम अमरीकन और यूरुप वाले तो नही है, हमारा नैतिक पक्ष कमजोर, राजनीतिक चाल ही मजबूत फलतः हम मे शुद्ध विश्वास नही, सन्तोष नही, शान्ति नही। हम एटम-बमवान परम धनवान हो जाने पर भी शत्रु संघर्ष और पराजय के भय से सारी रात जागने वाले और इन आत्मबलवानों के सामने आकर जीते। ऐसा कोई शत्रु नही ! आखिर ब्रिटेन के पास भी तो एटमबम था ? फिर मि० एटली ने इस सोने की चिड़िया को छोड देने का इरादा क्यों किया है ?

एटमबम से विश्व-विजय न होगी। विश्व-विजय तो प्रेम मे ही होगी, त्याग ही से, ऐसा गाधी जी का कहना है। एटमबम अमेरिका के पास आज, भारत के पास महाभारत के ही युग में था। बनारस के एक बडे विद्वान ने मुझे बतलाया कि महाभारत काल में एटमबम बनाने की विद्या केवल ब्रह्मचारी भीष्म को मालूम थी। अपने गुरु भगवान परशुराम से

काशीराज कुमारी अम्बा के कारण युद्ध करते वक्त उन्होने अन्त मे जो दिव्य अस्त्र चलाना चाहा वही एटमबम था । परशुराम जी के पास वह बम नही था ।

'अमेरिका के पास एटमबम था, जापान के पास नही, पर सभ्य अमेरिका ने सर्वदाहक अस्त्र का प्रयोग शत्रु पर उल्लास से कर डाला, ऐसा अन्याय हम आर्यों ने कभी पसन्द नही किया । काशी के विद्वान् ने गर्व से मस्तक ऊँचा कर कहा—युद्ध में भी धर्म का विवेक हमने बराबर किया । सारे जगत ने ब्रह्मचारी भीष्म को भगवान परशुराम पर एटमबम चलाने से रोका । जापान पर जब अमेरिका ने एटमबम गिराया तब आज के नीच राष्ट्र टुकुर-टुकुर ताकते रहे । हमारे पुण्य देश में भीष्म की माता गगा तक ने सतेज वर्जन किया था कि वह हथियार शत्रु पर हर्गिज न चलाया जाय जो उनके पास नही है । ऐसा करना अन्याय और आततायीपन है ।'

इस 'मूड' में है इस वक्त इण्डिया । वह एटमबम से नही, आत्मबल से विश्व-विजय पर बद्ध परिकर है । वह मारेगा किसी को बहुत मुश्किल से, हाँ, स्वयं मर कर संसार को अमरता की कुजी देने का साधक वह अर्वाचीन तो है ही प्राचीन भी बहुत है ।

जौहराबाद

14-15 अगस्त 1947 को मैंने जौहराबाद नामक इण्डिया के बड़े शहर मे जो कुछ देखा वह सचमुच 'ग्रेण्ड' था । अद्भुत थी वह नगर कांग्रेस की वह खुली बैठक, जिसमें सभी दलो के कार्यकर्त्ता पधारे थे । 15 अगस्त को कौन भाग्यवान सुभाष चौक में झण्डा ऊँचा करे, यही मसला सबके सामने पेश था ! सभा मे बड़ा उत्साह, गहरा जोश था । सभी दलों के हिन्दुस्तानी गोया यह महसूस कर रहे थे कि उन्होंने गत गौरव पुनः प्राप्त कर लिया है और अब उनकी आँखों के आगे एक आदर्श है, और सीने मे मजबूत साधक शक्ति है । कम्यूनिस्ट, सोशलिस्ट, फारवर्ड ब्लॉक वाले और मजदूर-किसान प्रजा पार्टी वाले कोई हो—गांधी टोपी सबके सर और दूध, चाँदनी, बर्फ की तरह शुभ्र खद्दर हरेक के तन पर । इससे ऐसा भासित होता है कि पार्टियाँ भले ही भिन्न-भिन्न हो, मगर प्रेरक सबके एक

महात्मा गांधी ही है। गांधी सच्चे माने मे आज हिन्दुस्तान का कमाडर इन चीफ है और कैसा अजीवो-गरीव दुनिया को हैरत मे डालने वाला कमाडर! इस सादगी पे कौन ना मर जाय—ऐ खुदा लड़ते है मगर हाथ में तलवार भी नही!

कहने का मतलव यह कि सभा में महात्मा का रग गहरा था। जौहरावाद के लोगो ने हिन्दुस्तान की आजादी की लडाई में काफी कुर-बानियाँ की, मुझे वतलाया गया। विदेशी दमन का नंगा से नगा रूप सन् 57 से 47 तक जौहरावाद की जनता के सामने बार-बार आया। बार-बार अंग्रेजों ने हरे-भरे शहर को उजाड, क्रान्तिकारियों की वस्तियाँ वरवाद कर डाली थीं। मगर जौहरावाद अपने ढग का बेजोड शहर। हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी सभी एक आवाज से अंग्रेजी राज के विरुद्ध और स्वराज्य के हिमायती। *यह वात मैंने अनुभव की तव जव झण्डे के प्रश्न पर 17 नाम* ऐसे आये जिनमे सभी फिरके के त्यागी वडे आदमी थे। सवके समर्थक यही चाहते थे कि उन्ही का पसन्दीदा त्याग वीर 15 अगस्त को सुभाष चौक में स्वतन्त्रता के प्रथम प्रभात मे राष्ट्रीय पताका फहराय। उक्त 17 हों मे ठाकुर वलवीर जी थे। वड़े जमीदार, मगर देशभक्त कट्टर, बार-बार जेलवासी! पं० पूर्णेन्दुप्रकाश पाठक थे, मजूरो के सवमे वड़े नेता। श्रीराखा चन्द्र लाहा नामक बंगाली क्रान्तिकारी वमवाज थे जो दो-दो वार फाँसी के तख्ते पर झूलने से बचे थे और जिनके जीवन पर जौहरावाद के नौजवान सौजान से फिदा। 'वलवा' के सुयोग्य सम्पादक श्री मोतीलाल जी वेशम्पायन के पक्ष मे तो प्रायः सारी सभा थी। पिछले आन्दोलनो मे 5 बार तो पुलिस ने 'वलवा' प्रेस को धूल मे मिला दिया था। सम्पादक जी के समर्थकों की गिनती नामुमकिन थी। फिर देवी भद्रशीला जी थी कि नही जिनके पति का देहान्त जेल के सीखचों के अन्दर हो गया था।

झाऊलाल

अन्ततोगत्वा सवसे अधिक मत मजूरो के नेता पूर्णेन्दु पाठक और देवी भद्रशीला के पक्ष मे स्पष्ट मालूम पड़ने लगे। इसी वक्त एक दुवला-पतला कम्यूनिष्ट युवक उठ खडा हुआ। उसने कहा—मैं इस महान अवसर पर

सुभाष चौक में झण्डा फहराने के लिए रोशनपुर के लाला झाऊलाल का नाम 'प्रपोज' करता हूँ। क्या आपमे से किसी साहब को कोई आपत्ति है? इस पर सारी सभा ने तरुण कम्युनिस्ट की प्रशंसा कर उसकी राय सादर मजूर की। सम्पादक 'बलवा' और भद्रशीला जी दोनों ही ने एक स्वर मे स्वीकार किया कि पिछली आजादी की लडाई मे रोशनपुरा के लाला छाऊलाल जी की कुरबानियाँ बेजोड़ है। शहीद एक बार शहीद होता है; लालाजी को सौ-सौ बार शहीद होना पड़ा सौ-सौ रग से, मगर उफ उस मर्द ने कभी न की!

मैं सारे जौहराबाद की जनता की तरफ से आदरणीय लाला झाऊलाल जी मे प्रार्थना करता हूँ कि आज वही इस झण्डे को लहरायें, जिसकी शान रखने मे आपने बेहद कुरबानियाँ की, जिल्लतें उठाई, दो बेटे खोये, एक आँख गवाई—नौकरी खोई, घर और जमीन दोनो की बर्बादी अपने आँखो देखी, पर उसूल से टस से मस न हुए।

सबके साथ मेरी नजर भी उस व्यक्ति पर पड़ी जिसे सम्बोधित कर कम्युनिस्ट कामरेड ने उक्त बात कही थी, याने झाऊलाल पर। अब तक मेरी धारणा थी कि बड़े काम कुरबानी, त्याग वही कर सकते हैं जो लम्बे-चौड़े खूब दर्शन हों। झाऊलाल मे वैसी एक भी बात नजर न आयी। अमेरिका की अधिकांश जनता तो ऐसे शख्स को क्या से क्या कह कर 'लिंच' लटका कर मार डालती। हैरत! झाऊलाल भी कोई आदमी!

भुनगे-सा ठिगना, काला रंग, दुबला इतना कि तन के कपड़े ऐसे लगते गोया लोहे की लम्बी सीखो पर टंगे हैं। मुँह के कई दाँत नदारद होने से झाऊलाल का चेहरा पोपला पड़कर पिचक गया था। कानी आँख पर ऐसी छबि और रङ्ग! वही—करेला नीम चढा वाली हिन्दी कहावत खैर!

झाऊलाल अपने स्थान से उठ कर विशाल राष्ट्र ध्वज के गगनचुम्बी स्तम्भ के पास ऐसे चले जैसे कोई प्रेत स्वप्न में विपत्ति की तरह मन्द गति से चले। वह झण्डे के पास स्तम्भित खड़े हो गए। सामने सारे जौहराबाद का जन-समुद्र हरहरा रहा था। जनता के समुद्र ने गम्भीर गर्जन कर कहा—त्याग वीर की जय! इसके बाद कम्युनिस्ट तरुण ने झाऊलाल का परिचय

न्यो दिया—

"साथियो ! यह हैं साथी झाऊलाल जी, जिन्हें आप भली-भाँति जानते-पहचानते हैं। देश की आजादी की लड़ाई में शुद्ध-त्याग बलिदान हम सबने किए, पर लाला झाऊलाल के त्याग महान् हैं। लाला जी—आपको मालूम होगा—आजकल वही खानदानी त्यागी हैं! आपके दादा लाला हरनन्दन-सहाय जी बिहार के विख्यात बाबू कुँवरसिंह जी के मीर मुंशी थे। बड़े जागीरदार, आलिम और विद्वान्। जब देशभक्त कुवरसिंह सकट मे पडे तो लाला हरनन्दन सहाय ने अपनी सारी जागीर बेच कर अंग्रेजों के खिलाफ उनकी मदद की।

"इसके बाद बेदर्द ब्रिटिश गोराशाही ने लाला हरनन्दन सहाय और उनके खानदान को कभी माफ नहीं किया। स्वय लाला जी दुश्मनों के बन्धन और जेल में स्वर्गवासी हुए झाऊलाल जी के पिता जी को तो चढती जवानी मे नीच गवर्नमेंट के इशारे पर घातक आक्रमण से मार कर कोई गुण्डा लापता हो गया, इस तरह 12 वर्ष की वय मे ही झाऊलाल जी के कोमल कन्धों पर परिवार के संभालने का भारी भार आ पड़ा और उसी अवस्था में इस बहादुर ने परिवार ही नहीं, क्रान्तिकारी आन्दोलन को भी मजबूत बनाने में सफलता प्राप्त की !

"गोरी गवर्नमेंट धोखे में रह, क्रान्तिकारियों का काम निर्विघ्न चलता रहे—निस्सन्देह इसलिए झाऊलाल ने सरकारी नौकरी कर ली, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के हैड क्लर्क बन गये। फिर भी नौकरी कम और विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह भड़काने का धन्धा ही अधिक आप करते रहे। तब तक आये मैदान में अहिंसा का वस्त्र लिये, प्रेम से मुस्कराते, सत्य दिव्य-उन्नतमस्तक महात्मा गांधी की पुकार पर जौहराबाद में सबसे पहले सरकारी नौकरी छोड़ सत्याग्रह किया लाला झाऊलाल ने। सन् 42 तक आप कई बार जेल हो आये मगर आप जनता के सामने नेता की तरह कभी नही आये। हमेशा विनीत कार्यकर्त्ता या स्वयसेवक ही रहे। खतरे के वक्त आगे आ लोहा लेना और जब संकट टल गया, तो चुपचाप अपने घर मे बैठ निर्मम विदेशी राज्य को उलटने वाले बहादुर से सम्बन्ध स्थापित कर किसी और महाविपत्ति को न्यौतने में लग जाना !

"कितने कार्यकर्ताओं की लाला झाऊलाल ने गुपचुप मदद की, कोई गिनती नहीं और लाला जी की नजर केवल शुद्ध योद्धाओं पर रही। कांग्रेसी हो, बमबाज, कम्युनिस्ट या सोशलिस्ट यह सभी को मदद करने पर तन, मन, धन से तैयार। फिर भी आप चार आने तक के मेम्बर नहीं, न कांग्रेस के, न कम्युनिस्ट या किसी पार्टी के। सबकी मदद करने में पुरखों के वक्त के लिए कोई दो लाख रुपये का खानदानी जेवर और दुख के वक्त के लिए संचित नकदी निधि धीरे-धीरे सर्फ हो गयी, मगर लाला जी के घर की देवियों ने कभी 'ना' न कहा। सारे खानदान ने भूखों मर कर भी, फटेहाल खुद रह कर भी, सच्चे देशभक्तों की मदद दिल खोल कर बराबर की।

"चुपचाप जौहराबाद के एक कोने में बैठ कर लाला झाऊलाल ने कभी बमबाजों को मसाले जुटाये, सत्याग्रहियों को सूत और चर्खे और कभी 'करो या मरो'! की पूर्ति के लिए घर का बचा-खुचा सामान बेचकर रेलवे लाइन उखाड़ने, तार काटने और बिजली के सम्बन्ध नष्ट करने के औजार जुटाये। सन् 42 में इस वीर लाला ने आजादी के यज्ञ में अपना सर्वस्व ही होम दिया। दो बेटे, क्रमशः 17-15 वर्ष के उगते नवयुवक दोनों ही सन् 42 में जौहराबाद कांग्रेस दफ्तर पर लहराते तिरंगे झण्डे की शान पर कुरबान हो गये, पर ब्रिटिश टामियों को हाथ लगाने न दिया। इसके बाद जब दुश्मनों को यह मालूम हुआ कि दोनों बहादुर लड़के लाला झाऊलाल के थे तो उन्होंने लालाजी का घर गोरी पलटन से घेर ऐसे जुल्म तोड़े कि शोक और भय से लाला जी की पत्नी का हार्ट फेल हो गया और होता भी क्यों न। साम्राज्यशाही के कुत्ते सफेद सैनिकों ने स्त्री के सामने लाला जी को नंगा कर सैकड़ों हन्टर लगाए! जब वह जमीन पर गिर पड़े तब शैतानों ने बूटों की ठोकरें मार-मार कर लालाजी का सारा चेहरा लाल कर डाला। कान के पर्दे फट गए। एक आँख आजादी की भेंट हो गयी। स्त्री के साथ पुरुष को भी मरा जान जब गोरे चले गये, तब लाला जी हिले, होश में आये, मगर औरत के लिए रोने नहीं बैठे, न तो गहरे लगे जख्म ही धोने। न रोये। उन्होंने तो उस समय भी सारे जौहराबाद और पास के गाँवों में घूम-घूम कर प्रचार किया कि गोरी गवर्नमेण्ट और पल्टन की

कोई भी मदद न करे। पास की रेलवे लाइनें और तार काट डाले जायें। सडको मे बड़े-बड़े गड्ढे खोद कर दुश्मन की मोटरों को गुजरने के नाकाबिल बना दी जाये। जो हमारे प्यारे मुल्क को गुलामी मे जकडने के फेर मे है, उस दुश्मन सेना की राह के कुओं मे जहर, तालाबो मे मगरमच्छ डाल दिए जायें। जला दिया जाय घर का अनाज भले ही, मगर गोरों के हाथ वह न लगे !

"*और जौहराबाद और उसके आस-पास के गाँवो में नये नेताओं के* जेल मे होने पर भी गोरी पल्टनों को ऐसा लोहा दिया कि याद करें। 9 दिनो तक सारे जिले में एक भी गोरा नजर नही आया। कचहरी, थानो पर जनता ने कब्जा कर लिया। जब एक भी नेता नही था तब 9 दिनो तक जौहराबाद मे स्वतंत्र सरकार चलायी लाला झाऊलाल ने। पचायतें कायम की, स्वतंत्र रक्षा दल बनाए। गाँवो मे आदोलन इतना उग्र हो उठा कि प्रतिशोध मे अंग्रेजी सेना ने वह गाँव जलाये, उनमे रहने वालों को गोलियो से भून डाला। मगर फिर भी झाऊलाल अंग्रेजो के हाथ न आये। आतंक फैलाने के लिए अंग्रेजो ने लाला जी के घर को बारूद से उडा, गधों के हल से चौरस बना बीच मे लाला जी के पुतले को फाँसी पर लटका दिया !

"साथियो ! आज बड़ा शुभ दिन है जो जुल्मी गोरे बोरिया-बसना बाँध रहे हैं, भारत आजाद हो रहा है और उसकी आजादी मे मरने-खपने वाले *सफल काम हो रहे है ! यह लाला जी हमारी आँखो के सामने उस जन*-साधारण के प्रतीक की तरह खडे है, जिसने स्वतन्त्रता की लडाई में हर तरह की कुरबानी दी है, पर जिसे कोई नही जानता। न तो गीतकार न इतिहास लेखक ही। असल मे वही प्रभू बल सम्पन्न सर्व शक्तिमान है। बोलो जन-साधारण की जाय !

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा,
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

दुर्बल, काले, पोपले, काने, बहरे; निर्धन प्रचण्ड देशभक्त लाला झाऊलाल ने डोर पर जोर दिया। तिरङ्गा हवा मे लहरा चला। उपस्थित जनता ने स्वतन्त्र घोष कर झण्डे की वन्दना की। फिर बड़े-बड़े अंग्रेज

अफसरों ने फौजी अदा से सलामी दी। फिर गोरी सेना ने सलामी दी। फिर गोलंदाजों ने। फिर हवाबाजों और नौसैनिकों ने और अन्त में पुलिस ने !

झाऊलाल यह सारा जलसा एक ही आँख से वैसे ही देखते रहे जैसे बड़े परिश्रम से जोते-बोये, वायु-बवंडर से बचाये पके खेत को खेतिहर देखता है।

जौहराबाद ही की तरह सारे इण्डिया मे आजादी का जोश जगमगा रहा है। बहुत से कट्टर हिन्दू बंगाल, पंजाब और सिंध के बँट जाने या पाकिस्तान कायम हो जाने से सन्तुष्ट नहीं। वे आसिंधु हिमाचल भारत को स्वतन्त्र देखना चाहते थे। उनका कहना कि आर्यजाति का आदि देश, वह ब्रह्मावर्त्त और ब्रह्मर्षि देश जहाँ वेद मन्त्रों का सर्वप्रथम उद्‌घोष हुआ था, सिन्धु और सरस्वती का वह अन्तर्वेद जहाँ हमारे धर्म और संस्कृति की नीव पडी थी, आज हमसे अलग हो रहा है। ऐसी आजादी से लाभ ही क्या ? कांग्रेस वाले यह सही जवाब देते है कि पाकिस्तान या देश के बंटवारे का दुख हमें भी है पर 29 करोड़ हिन्दू स्वतन्त्र हो रहे है, यह लाभ थोडा नहीं। ऐसा सुअवसर एक हज़ार वर्ष बाद प्राप्त हो रहा है और थानेश्वर के मैदान मे पृथ्वीराज की पराजय के बाद हमारी परवशता का सिलसिला जो बना, सो आज टूट रहा है ?

आखिर इण्डिया आजाद हो गया

इण्डिया चिरजीवी हो !!

रंग

अगस्त 1947, पूने की बात। रेस के मैदान के दूसरे दर्जे या सेकेण्ड इंक्लोजर में दो पारसी तरुण—फरामजी और मीनू !

मीनू—चौथी रेस हो चुकी पर सिवा हार के हासिल कुछ भी नही ! आज का दिन तो मनहूस ही गुज़रता मालूम पडता है।

फराम—पिछली तीन रेसों में डटकर 'बेट' करने के सबब मेरा तो अभी ही दिवाला निकल चुका है। छेल्ली रकम मेरी जेब मे है, महज़ पांच रुपये दस आने।

मीनू—इतने पैसे तो पूने से बम्बई की वापसी रेल-यात्रा ही के लिए चाहिए। मैं कहता हूँ फराम—अब हम न रमें तो बेहतर हो।

फराम—जब तक एक भी टिकट के रुपये जेब मे हो, तब तक बन्दा तो बाज़ी लगाता जाता ही है। हार गया तो बिना टिकट बम्बई चलना मंजूर, पर इस रेस का चान्स छोड़ना गधेडों का धन्धा होगा। महाराज ग्वालियर की घोडी-बेगमपारा-श्योर डेड सरटेनटी है, पांचवें रेस की। सिनेमा एक्ट्रेसों में बेगमपारा जैसी तेज़ तर्रार, घोडियो मे वैसी ही यह। गैलप, फ़ार्म, वेट, चास सभी बेगमपारा के फेवर में है। मगर यह तो बतला मीनू ! ये राजा लोग सिनेमा एक्ट्रेसो के नाम अपनी घोड़ियों को क्यों देते हैं ?

मीनू—यह सवाल घोड़ी और एक्ट्रेस-पसद राजाओं से पूछ या राजा और रेस-पसंद सिनेमावालियों से—मुझसे क्यों पूछता है? सामने बोर्ड देख ! वह ! नम्बर 9 जोन्म। अहो ! बेगमपारा पर जाकी तो बुरा जा रहा है, हैवीवेट।

फराम—बस घास खा गयी है तेरी अक्ल मीनू! इतने दिनो रेस मैदान की धूल फांक तूने झख मारा। मैं शर्त लगाता हूँ—बेगमपारा—ईज़ी। क्या मजाल जो कोई दूसरा जानवर उसकी दुम के बाल भी छू सके। जोन्स-जॉकी-हैवी-वज़नी है, हां, पर चाल और काल (वक्त) का मास्टर। ऐसी फिनिश करता है कि जॉकी नही जादूगर मालूम पड़ता है। चल! पहले टिकट खरीद लें—स्ट्रेट विन का मैं तो लूंगा क्योंकि रुपये पाँच ही हैं। तेरे पास जितना भी हो—मैं कहता हूँ—बेगमपारा पर रम जा, कमा लेगा……।

मीनू—माफ़ करना फराम—बेगमपारा का मुझे भरोसा नही, सौ में सौ बार दगा करेगी। ग्वालियर के घोड़े तभी जीतते है जब राजा मैदान में होता है। राजा तो दिल्ली मे है—सुना है। मेरे पसन्द का जानवर इस रेस में है न० 2—हर मेजेस्टी। क्या कमाल की घोडी है कि सारे देश मे मशहूर—पन्द्रह बार दौड चुकी, कभी हारी ही नही। जब देखो 'विन' बनी धरी है।

फराम—पागल न बन, मैं कहता हूँ आज हर मैजेस्टी पर कोई रेस का जानकार जुआड़ी एक कौडी भी नहीं लगायेगा। इतनी लम्बी, सवा मील की रेस वह जीत ही नही सकती—मर भी जाय तो।

गर्ज़ कि दोनों पारसी युवकों ने अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार टिकेट खरीदे। फराम ने सीधा—अव्वल या 'विन' का टिकेट खरीदा। मीनू के पास अभी सौ-सवा सौ रुपये थे। उसने पचीस-पचीस के 'विन' और 'प्लेस' के टिकट 'हर मेजेस्टी' के खरीदे। घोड़े मैदान में लाए गए। रेस छूटने की जगह तार के उस पार झपटने को सफ बांधकर तैयार चलते-मचलते स्वस्थ सुदर्शन घोड़े!

फराम—रेस खेल तो खेलों का राजा है मीनू। मैं इसे फ़र्स्ट क्लास का 'स्पोर्ट' मानता हूँ। जुआ भी तो ऐसा जिसे वायसराय खेले—बादशाह भी! दोज़खी, चमाचम चमन! बागे अदन!! मुंह मांगा मिले, तो मैं खुदा से यही मांगू कि परवरदिगार पहले तो रुपया हो—बहुत-बहुत। फिर हफ्ते के सातों दिनों के नाम शनीचर कर दिए जायं ताकि जी भरकर रेस खेला जा सके। रेस के मैदान में चले आइए—बस—आ गये माडर्न

परिस्तान में जहाँ मय, मीना, सागर, साकी—याने सुरा, सुराही, प्याला और प्यारी—एक ही जगह ! सारे जहाँ से अच्छा रेसीस्ताँ हमारा ! फिर्रर्र—घण्टी बजी। रेस छूटी—बेगमपारा ! बेगमपारा !!

पर फराम के दुर्भाग्य ! रेस 'विन' किया 'हर मेजेस्टी' ने—ओर से छोर—'स्टार्ट टु फिनिश'—तक। वह इतनी अच्छी दौड़ी कि दूसरे जानवर उसके मुकाबले में खच्चर और गधों की गति से आये और ग्वालियर की बेगमपारा। खुदा की मार—लाख बार। उसने दौड़ने में कभी रुचि ही न दिखाई और सबके पीछे चहलकदमी कदम से आयी। फरामजी का मुँह फक्क। उधर मीनू को देखो तो चेहरा नहीं, सौ कैण्डिल पावर का 'बल्ब'—स्विच आन ! फिर भी अन्तिम टके हारने का जहरीला घूँट पीते हुए उसने साथी को बधाई दी—

फराम—कांग्रेचूलेशन्स ! खूब ! साली खूब दौड़ी ! सोलहवीं जीत ! घोड़ी नहीं, परी है परी ! और यह बेगमपारा—खच्चरी—सूरत हराम—मुझे तो मार ही डाला इसने।

पर मीनू को कहाँ फ़ुरसत, वह जीत में। विन और प्लेस के पाँच-पाँच टिकेट। कुछ भी 'डेविडेण्ड' या फाला बटे गठरी होगी—गहरी। मीनू सीधे जीत के पैसे मिलने वाली जगह की तरफ लपका—आह ! कैसा भाग्यवान ! फराम मीनू की खुशी से चमक उठा और अपनी यह हार बड़ी ही खली। वह काफी रुपये हार चुका था—डेढ सौ ! सौ रुपये माहवार पाने वाला सेंट्रल बैंक का क्लर्क और हार गया डेढ सौ ! डेढ सौ कर्ज लेकर वह आया था। उस दिन उसके सभी घोड़े 'श्योर' थे, डेढ सौ से हज़ार-दो हज़ार बनाने की उम्मीद बाँधकर वह आया था। अब कर्ज देगा कहाँ से ? महीने भर खायगा क्या ? उसे ऐसा जोखम नहीं उठाना चाहिए था। उसने ऐसा 'रिस्क' लिया क्यों ? पर वह अपने को दोषी मानने को तैयार न हुआ—आशा लगायी उसने तो बुरा क्या—अस्वाभाविक क्या इसमें ? आदमी आशा ही पर तो जीता है, मरता है ! मगर आशा झूठी क्यों निकली ? पर जुए का दाँव का भरोसा ही क्या ? पर जुआ गवर्नमेंट खेलाती क्यों है ऐसा जिसमें आशा का इतना चमचम चिराग देखकर किसी की अक्ल चौंधिया जाय—पतिंगों की तरह टूटकर अटूट लाभ के

लोभ में कोई जल मरे ! आह ! मीनू के लौटने पर फराम रेस की निन्दा कर चला—

फराम—यह सरासर बेईमानी का हराम धन्धा है।

मीनू—देख धीकरा, हार गया तो अब इस धन्धे को हराम तो न कह। बम्बई, पूना, कलकत्ता, मद्रास मे अनेक परिवार रेस के जूए पर पलते है। खुद मैं ही सिवा रेस खेलने के और कोई भी काम नही करता।

फराम—पर है यह निहायत हराम। गाधी जी ने शराबबन्दी में जितना जोर लगाया उतना इस शैतानी धन्धे के विरुद्ध नहीं जब कि रेस में शराब पीकर वेश्याओ के गले मे बाँह डाल कर खुले आम आदमी जुआ खेल सकता है। शराबखाने में महज दारू बिकती है। यहाँ तो वाम-मार्गियों के पंचमकार का मीना बाजार लगता है और मिनिस्ट्री है कांग्रेस, प्रधान मंत्री है महात्मा जी के विश्वस्त भक्त।

मीनू—रेस मे सरकार को बडी आमदनी होती है, इतनी कि रेसें बन्द हो जायें, तो बजट फेल हो जाने का अदेशा है। कांग्रेस मिनिस्ट्री हो या कोई, सरकार चलाने के लिए पैसे तो चाहिए। सो, खास मौको पर कांग्रेस मंत्री लोग भी रेस के मैदान की रौनक बढाया करते है। उस वार्ड का वह मशहूर कांग्रेसी भी तो इसी इन्क्लोजर में चोरी से 'बीट' खाता है। दस-दस आने तक की जब कि एक टिकेट पाँच रुपये बिना मिलता नही

फराम चुप रहा पर मन ही मन गम्भीर चिन्तामग्न। वह बरदाश्त से बाहर हार गया था। उसे कोई कूल किनारा नजर नहीं आ रहा था। वार्ड कांग्रेस वाला 'बीट' खाता है, तो उसी ने खेल कर कौन पाप किया। पाप है हारना। खास कर फराम जैसा। अब उसके पास एक टिकेट तक के रुपये तो नही, पर क्या ? हाँ, वह तो दस आने तक की बीट लेता है और दस आने तो अभी फराम की जेब मे थे। फ्लूक घोड़ा कोई लग जाता तो दस आने ही में एक रकम मिल जाती। है न इसी रेस मे वह 'ट्रेटर' बिलकुल तैयार। जीते तो चार सौ से कम न देगा पाँच रुपये पर। पाँच पर चार सौ, तो ढाई पर दो सौ, तो सवा रुपये पर सौ और दस आने पर पचास रुपये ! अभी यह छठी रेस है। पचास मिल जायें तो नवी

रेस तक 'लॉस मेकअप' पूरा किया—कुछ मुनाफ़ा तक किया जा सकता है। हाँ, बड़ी आशा पूरी आशा—पूरी आशा !

मीनू की आँख बचा फराम कांग्रेसी बीटखोर की तलाश मे लपका और 'जिन खोजा तिन पाइयाँ'। भलाई के रत्न गहरे मे हो पर बुराई के शैवाल जाल कितने मनहरे है और निकट। कांग्रेसी मिल गया सर से पाँव तक खद्दरधारी इस्तरी की हुई बाँकी गाधी कैप। पर कांग्रेसी ने फराम को निराश किया—"रेस छूटने के करीब है, अब बीट नही ली जा सकती।" इस पर लाभ के लोभ से लोलुप हार से लाचार फराम ने दांत दिखाकर प्रार्थना की "देखिए, आप देशभक्त है, सबका भला करना आपका फर्ज है। ट्रेटर पर मेरे दस आने 'विन' लगा दीजिये प्लीज—प्लीज !" इस पर नखरे के साथ फराम ने पैसे लेते हुए बीटखोर खद्दरधारी से कहा—"ट्रेटर पर दस आने पैसे मैं यह समझकर खा रहा हूँ कि तुम धोखा खाओगे। यह घोडा न तो कभी जीत पाता है और न पायेगा—कसम भारतमाता की !"

लेकिन इस बार फराम का निशाना खाली नही गया। जीता ट्रेटर ही ! और कैसा 'फ्लूक' था अचानक आने वाला। चार सौ नही, ट्रेटर ने दस रुपये के टिकेट पर सोलह सौ रुपये दिये। याने पाँच पर आठ सौ। इस तरह फ़राम को दस आने के पूरे सौ रुपये हुए, पर कांग्रेसी बीटखोर बदल गया देने के समय यह कहता हुआ कि ऐसे अचानक आने वाले घोडो पर प्राइवेट बीट खाने वाले लिमिटेड पेमेंट करते है। पाँच पर सौ रुपये से ज्यादा नही। इस तरह दस आने के साढे बारह रुपये हुए। फराम के लाख सर खपाने पर भी खद्दरधारी जुआडी टस से मस नहीं हुआ। इस पर बारह रुपये लेने से इनकार कर बकता-झकता वह वहाँ से हट तो गया पर द्वेष उसके मन का गया नही, किस तरह इस बेईमान खद्दरधारी को सबक सिखाया जाय वह यही सोचता रहा, हाँ, उसे याद आयी। वह पारसी सार्जेण्ट बाटलीवाला है न ? जरूर इसी रेस कोर्स मे होगा कही। उससे एक भी मीटिंग छूटती नही है। वह कही मिल जाता तो फराम इस नमक हराम खद्दरधारी को ठीक कर देता। वो रहा वह ! लपक कर फराम बाटली वाले के पास 'फिर उसके काम के पास' फिर दोनो बीटखाने वाले

की खोज में ! दूर ही से फराम ने वाटलीवाले को दिखाया—"वह देखो अलानियाँ वह बीट ले रहा है। पीछे से जाकर कालर से साले की गर्दन कसो !"

देखते ही देखते वाटली वाले ने खद्दरधारी जुआड़ी को गिरफ्तार कर लिया, फिर भीड़ से अलग एक तरफ ले जाकर उसकी तलाशी ली जिसमें दो हजार तीन सौ चार रुपये निकले और छोटे-बड़े पुर्जे जिसमें पेंसिल से बीट लगाने वालों के नाम और घोड़ों के नम्बर लिखे थे।

"क्यों जनाव," वाटली ने जुआड़ी से पूछा—"हुजूर का इस्मशरीफ या नामेमुबारिक ?"

"छगन भाई—!"

"खद्दर पहनकर जुआ खेलते—जुआ ही नही टर्फ क्लब के कानूनी हक को चोरी से लूटने, 420 करते तुम्हे शर्म नही आयी मि० छगन भाई ?"

छगन भाई चुप। गिरफ्तारी से ज्यादा गम उसे उतने रुपये छिन जाने का था।

"रुपये तो मुझे लौटा दीजिए।" गिड़गिड़ाया वह।

"पहले तुम इस सवाल का जवाब दो कि ऐसे बुरे काम तुम खद्दर पहनकर क्यो करते हो ?"

"खद्दर मे हुजूर, लाख ऐब छिप जाते है"—उसने कहा—"खद्दर राजनीति धर्मवालों का रामनामी दुपट्टा है ऐसा जिसे जो भी ओढ़ ले वही साधु, देशभक्त, त्यागी माना जाएगा। खद्दर पहन कर चोरी का बीट कितने दिनों से खाता हूँ—पर पकड़ा आज ही गया।"

इसके बाद बहुत गम्भीर भाव से जुआड़ी ने पुलिसवाले से कहा, धीरे से—"उसमें से सौ का एक नोट लेकर मुझे छोड़िए, मैंने कुछ खून तो किया नहीं है।"

"क्या किया है तुमने और क्या नही किया इसका पता पुलीस स्टेशन पर लगेगा।"

"दो सौ लेकर जान छोड़िए।"

"मै फर्ज अदा करता हूँ—रिश्वत नही खाता। फिर ऐसे लफ्ज़ ओंठ पर लाना नही।"

"पाँच सौ हुजूर, पाँच सौ।" गिडगिडाया छगन भाई।

इसके बाद क्या हुआ, छगन भाई ने रुपये दिए या नहीं, बाटली वाले ने लिये या नहीं हमें मालूम नहीं। पर शाम को जब पूना स्टेशन पर फराम और छगन भाई मिले तो पहले को देखते ही दूसरा गालियाँ दे चला—

"ट्रेटर—ट्रेटर को तो जूतों से मारना चाहिए। जिसने दगा से मेरा सत्यानाश कराया उसका सब सत्यानाश होकर रहेगा—मेरे पास टिकेट तक के पैसे पुलीसवाले ने नहीं छोड़े। जान छोड़ी तो पर जान निकाल कर जेब में जब्त करने के बाद। यह पुलीसवाले जनता के रक्षक नहीं, पूरे भक्षक हैं नाग—तक्षक। सालों ने उल्टे उस्तरे से मुझे मूडा।"

साढे दस बजे रात खोली में लौटकर आते ही छगन भाई ने पहले अपनी पत्नी को पीटना शुरू किया, इसलिए कि वह सो क्यों रही थी। लडकी को इसलिए दो-चार धौल जमाये कि वह जाग क्यों रही थी। असल में सारे रुपये छिन जाने से उसका मानसिक सन्तुलन नष्ट हो चुका था। एक भी तो पैसा हरामजादो ने उसके घर नहीं छोडा था। आखिर कल का काम कहाँ से चलेगा। खोली का भाड़ा चार महीने से देना बाकी है, तीस रुपये के हिसाब से एक सौ बीस रुपये। घर में नामू चारे की भी कोई व्यवस्था नहीं, फिर तरसो ही 15 अगस्त। आजादी का पहला दिन—मैं कांग्रेस सर्किल का मशहूर देशभक्त। आज़ादी के तीन दिन पहले ही कांग्रेसी का दिवाला निकल जाना शुभ भविष्य का सूचक तो नहीं।

वह करवटें बदलता रहा ग्यारह से बारह बजे तक, पर नींद कहाँ—चिन्ताओं के जागते श्मशान में? सोने की दवा आखिर बिना सोये तो वह पागल हो जायेगा। पर नींद आयी नहीं, आनी नहीं। हैरान हो वह बिस्तर से उठ बैठा, कुछ सोचने लगा, उठकर कपड़े पहने और खोली से बाहर मकान के नीचे, सडक पर आ रहा। 'उसका धन्धा तो सारी रात चलता रहता है। उसी के यहाँ नींद की दवा मिलेगी।' मन ही मन भुनभुनाता कालवा देवी से धोबी तालाव की तरफ वह बढ़ा। फिर एक गली में। वह रुका एक अधखुले होटल के दरवाजे पर।

"खण्डू भाई हैं?"

"हैं-हैं—छगन भाई आओ," अन्दर बुलाते हुए खण्डू भाई ने पूछा—

"आधी रात के बाद आज कैसे चले महाशय जी, यहाँ तो देसी-ब्योड़ा-मिलती है। आपको तो दारू और बिस्कुट और औरत तो विलायती ही सुहाती है। कपडे बस खद्दर के, हा हा हा हा !"

"मज़ाक छोड़ो।" छगन ने कहा—"एक अद्धा मुझे मँगा दो, बहुत थका हूँ।"

"अभी लो, ओरे, सेठ साहब के लिए अद्धा तो ला।"

"इतनी जोर से न चिल्लाओ खण्डू भाई," छगन ने कहा—"कोई पुलीसवाला सुन लेगा तो मुसीबत आ जायगी।"

"मुसीबत की तो ऐसी-तैसी," छगन ने सामने पीने का सामान रखते हुए खण्डू से कहा—"बारह सौ रुपये महीने भरता हूँ। मूँछ के बाल उखाड लूँ कोई इधर आँख उठावे तो।"

"अजी, गो कि तीन ही दिनों बाद स्वराज्य होने वाला है पर नीयत पूछो तो किसी की सही नही। पुलिस वाला पैसे खाकर दूसरे को ललकार देता है। मुझे तो आज रेस मे बाटली वाले ने लूट ही लिया।" इसके बाद ब्योडा पीते-पीते रो-रोकर पूना की लूटवाली कहानी जुआडी ने शराब बेचने वाले को सुनायी।

"तिस पर तुम कहते हो 15 अगस्त से स्वराज्य होगा," शराब वाले ने जवाब दिया—"भैयाजी की बातें। अंग्रेज और स्वराज्य देगा ? कितनों से मैंने बातें की, एक को भी एतबार नहीं कि स्वराज्य होगा। कहते है आने वाली रितु की सूचना एक महीने पहले ही से लग जाती है। देखते हो बाहर सारी बम्बई मे स्वराज्य का कोई लक्षण ? न उत्साह, न तैयारी, न जोश—बस चर्चा-चर्चा। दूसरा देश होता तो महीनो से तैयारी होती। यहाँ खोजो तो शहर मे नये ढंग का एक झण्डा भी न मिलेगा।"

"स्वराज्य तो जरूर होगा, भले कमजोर हो"—छगन भाई ने खण्डू को समझाया। "ब्रिटिश पार्लमेण्ट वादो से मुकर नही सकता। पर झण्डे वाली बात तुमने खूब ताड़ी। बम्बई जैसे शहर में स्वराज्य होने के तीन दिनों पहले तक झण्डे न तैयार होना ताज्जुब की बात है। झण्डे तो यहाँ इतने बिकेंगे कि अगर एक ही आदमी को ठेका दे दिया जाय तो वह लखपती बन सकता है। अरे डेढ़ बज रहे हैं। यह झण्डे वाली बात खूब

रही, अच्छा चलूँ, पैसे फिर दे जाऊँगा।"

"अजी आपके पैसे कहाँ जाते है, आइयेगा फिर।"

और छगन भाई को फिर भी नीद नही, इतनी पी जाने पर भी। पहले वह रेस मे रुपये छिन जाने की फिक्र मे नही सो सकता था। अब एक नयी कमाई का विचार उसे जागरण का सन्देश सुनाने लगा। यह झण्डो का धन्धा अगर करें तो 3-4 दिनो में सारा घाटा ही पूरा नही किया जा सकता बल्कि मुनाफे की भी सम्भावना है। उसकी स्त्री सीने-काटने का काम जानती थी! स्त्री, लडकी और वह तीनो मिलकर तीन दिनो मे कई हजार छोटे-बडे राष्ट्रीय झण्डे क्या नही तैयार कर सकते?

"जितने भी कपड़े घर में हो," सुबह होते ही उसने अपनी स्त्री को आज्ञा दी— "सबको काट कर झण्डे की शक्ल में सी डालो!"

"क्यो?"

"खूब बिकेंगे—आनेवाले तीन दिनो तक।"

"पर खद्दर घर मे कहाँ है!"

"इन तीन दिनो मारे जोश के लोग झण्डे की शक्ल भर देखेंगे—कोई नही पूछेगा कि खद्दर है या देशी या विलायती।"

"रग कहाँ है—केसरिया या हरा? अशोक चक्र का साँचा या ठप्पा भी तो चाहिए।"

"देखो, अभी तुम्हारी सोने की दो चूड़ियाँ है न? उन्ही से रग या ठप्पे आयेंगे। आमदनी होते ही दो की जगह चार चूड़ियाँ आ जायेंगी।"

सचमुच पहले सारी बम्बई को आने वाले स्वराज्य की उम्मीद नहीं थी। पहले 13 अगस्त तक सारे देश में तैयारियो की जो धूम मची, दिल्ली मे लोगो का जमाव होने लगा, तब बम्बई के होश ठिकाने आये। अब जोश भी ठिकाने पर आया, लगे लोग मकानो की सफाई कराने, फूल पत्ते, बाँस और झण्डे की इतनी माँग बढी जिसका कोई ठिकाना न रहा। केवल 13 तारीख को छगन भाई ने पन्द्रह सौ झण्डे बेचे—छोटे-बड़े कुल मिलाकर दो हजार रुपये मे। आठ आने से लगाकर तीन रुपये तक के झण्डे छगन भाई ने तैयार किये थे, पुराने खद्दर मिल के कपड़े सड़े रेशमी वस्त्र और विलायती कपडो तक के जब झण्डों पर जनता टूटी तब किसी ने यह न

पूछा कि क्या स्वदेशी था और क्या विदेशी ! फिर कांग्रेसी द्वार बिकने वाले झण्डों में धोके का भय ही कैसे हो सकता था ? जो हो, इतनी तेज बिक्री देख छगन भाई की आँखें खुल गयी। यह तो लखपती बनने का मौका है, उसने सोचा। आज कपडे मिलते तो वह दो दिनों में लखपती हो जाता—आजादी का पहला फल उसके ही हाथ लगता। पर कपडो पर कण्ट्रोल। खादी बाजार मे नदारद, सूत दो या नकदी। लेकिन ऐसा नायाब चान्स हाथ से निकल गया तो बड़ी बेवकूफी होगी। उसे तो जैसे भी हो, झण्डे ही तैयार कर बेचना चाहिए।

उसने एक तर्कीब सोची। अगर पडोसियों के पुराने कपड़े सूती और रेशमी वह खरीद ले, तो कम दाम में चोखा काम हो जाय। किया भी यही और दो सौ रुपये में इतने कपड़े मिले उसे कि सारी कोठरी या खोली भर गयी। फिर पाँच आदमी नियुक्त किये गये। दो रगाई पर और तीन सिलाई पर चौथी उसकी पत्नी सीने वाली, फिर लडकी, फिर वह स्वय। देखते-देखते फिर हजारों झण्डे तैयार—कच्चे रंग सडे कपडों के और हजारों ही आनन फानन मे गायब। मिनट मे इतनी जल्द सिक्के क्या ढलेंगे जिस तेजी से वह उस वक्त रुपये जोड रहा था। 14 अगस्त की शाम तक नये बने झण्डे भी हाथो हाथ उड से गये। अब उसने सारी बिल्डिंग के पुराने कपडे खरीदे और उन सबके भी झण्डे बना बेचे।

छगन की इस आमदनी को सारी बिल्डिंग वालो ने देखा, वे उसकी चमचम चण्टता से चमक उठे—

"खूब सूझी छगन भाई को।" एक ने दाद दी।

"तीन ही दिनों मे साठ-सत्तर हजार रुपये पीट लिये पट्ठे ने, कितने झण्डे बिके और बिक रहे हैं ! कोई ठिकाना है ! सारा बम्बई शहर तिरंगा-मय हो उठा है, फिर भी तिरंगों की माँग। कागजी झण्डे तक तो मिल नही रहे है। हमारे दिमाग मे व्यापारी होने पर भी झण्डे वाली यह बात नही आयी। असल में स्वराज्य की उम्मीद ही मुझे तो न थी।"

"कांग्रेसी होने से छगन भरोसे मे व्यापार कर सका, पर पाप ! सच पूछो तो पैसे के लिए आदमी कितना नीचे जा सकता है कि राष्ट्रीय झण्डे तक को स्वार्थ मे लपेटने से नही चूकता।"

"अजी रोजगार की नजर से कुछ भी बुरा नहीं। पुराने कपड़ों को राष्ट्रीय झण्डों में बदल कर छगन भाई ने गुलाम आदमी के साथ अभागे वस्त्र को भी आसमान में लहरा दिया मुक्त बना कर!"

"आप तो मजाक करते हैं, पर हमारी यह आदत ठीक नहीं, जो सामने अन्याय, कुकर्म होते देखने पर भी हम चुप रह जाते हैं छगन जैसे धोखेबाजों की जगह मस्तिष्क सुधार घर या जेल होनी चाहिए न कि स्वस्थ समाज।"

"कुछ कहे कोई, छगन भाई समाज का साधारण सदस्य नहीं नेतावर्ग का व्यक्ति है। जिसे आप नीचता कहते हैं उसी की निसैनी से चढ़ते-चढ़ते वह एम० एल० ए० पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी मिनिस्टर तक बन जायगा और यह बेईमानी दुनिया या जनता की नजरों में विशेषता बन जायगी। लोग कहेंगे कि जो चिथड़ों के झण्डे कर सकता है, वह साधारण आदमी को कहाँ से कहाँ नहीं पहुँचा देगा।"

"फिर भी नैतिक नजर से छगन भाई की करनी नीचता और सबकी लापर्वाही मूर्खता मानी जायगी और जब तक राष्ट्रों में नीचता और मूर्खता का बोलबाला है तब तक स्वतन्त्रता की बातें—गाने और तराने—धोका, आत्मप्रवचना है।"

इसी समय छगन दो कारीगरों के साथ आया। आते ही मुस्कराकर उसने बिल्डिंगवालों से दरियाफ्त किया कि क्या किसी के पास कुछ पुराने कपड़े और हैं? अब वह दूने दामों में खरीदने को तैयार था, क्योंकि बाजार में झण्डे मुँहमाँगे दामों बिक रहे थे, पर अब किसी के पास कपड़े थे ही नहीं। रहे भी तो द्वेषवश किसी ने दिया नहीं। पर कारीगरों को तो वह साथ लेता आया था। फिर अभी तो झण्डे के धन्धे में कमाई का पूरा चान्स आया, आज झण्डे न बिके तो इतने दिनों का बेचना व्यर्थ माना जायगा।

सो कारीगरों को बाहर रोक खोली में घुस उसने अपनी पुत्री और पत्नी के सामने प्रस्ताव रखा कि अपने बाकी बचे सभी पुराने कपड़े दे दें, कट कर झण्डे बनने के लिए पर वे राजी न हुईं—"कन्ट्रोल का ज़माना और कपड़े न मिलें तो क्या हम नंगी रहेंगी?" जुआड़ी देशभक्त के मन से दो आने के कपड़े से पाँच रुपये कमाने का लोभ गया नहीं। ज्यादा

कहासुनी होने पर उसने अहिंसा को ताक पर रख हिंसा का सहारा लिया। पत्नी ही को नही पुत्री को भी मार-मार कर बेदम कर दिया, फिर उसने हाथ बाँध कपड़े ट्रंको से निकाल उसने उन्हे कोठरी मे बन्द कर दिया। क्योंकि उनकी तीव्र चीख-पुकार से मकानवाले चमक रहे थे।

(3)

आजादी का उत्सव सारे भारत में बड़े जोश-खरोश से मनाया गया निस्सन्देह पर बबई मे जो हुआ वह यही हो सकता था। तीन दिनो तक नगर और उपनगर जागते ही रहे, "प्रभुहि मिलन आयी जनु राती' सा आनन्द अटूट बना रहा। जिधर देखो उधर ही विविध आकार के झण्डे, फूल बन्दनवार बिजलियो की दीपावलियाँ। बड़ी-बड़ी बिल्डिगो ने तो मानो सर से पाँव तक अपना सरस श्रृंगार किया था। जगह-जगह पर फाटक तोरण द्वार बनाये गये थे। फूल के, पत्तों के, बर्तनों के, चाँदी-सोने के।

14 अगस्त को आधी रात—12 बजकर 1 मिनट पर—आज़ादी आयी तो सारी बम्बई मे उजाला ही उजाला। सदियो का पुजीभूत अन्धकार क्या जाने किस कालकोठर में उलूक की तरह छिप गया। एक मिनट के अन्दर ही राष्ट्र के माथे से कलंक की तरह यूनियन जैक सारे देश से गायब—जैसे मसीहा के छूने से कोढ। हिन्दी तो हिन्दी, अंग्रेजी अट्टालिकाओ पर तिरंगे—बहु ढंगे। इतनी जल्द यूनियन जैक हटा आखिर कैसे? मैं समझता हूँ अत्युग्र पाप की हस्ती मिटने पर आती है तो योही देर नही लगती। इतने शीघ्र तिरङ्गा जमा कैसे? मैं कह सकता हूँ अत्युग्र पुण्य के उदय होने में भी योंही विलम्ब नही होता। भावुक तरुण भारत 14 अगस्त को आधी रात तक जागता रहा—हाथों फूल फल और आँखों मे श्रद्धा गंगाजल भरे—उसी स्वतन्त्रता सर्वमंगला के स्वागत के लिए जिस पर देश के लाखो नौनिहाल कुर्बान हो गये, ललनाएँ सती हो गयी। उसी के इस्तकबाल के लिए जिसके मुस्त आगमन की भविष्यवाणी महात्मा कर रहे थे, कवि जिसके स्वागत का गीत गा रहे थे, वक्ता और लेखक गुण बखानते। दो टुकड़े हो जाने पर भी इण्डियन यूनियन के भाग वाले जितने जन आज आज़ाद हो रहे थे उतने हज़ार सालो में भी न हो पाये थे। आज

प्राप्त होने वाले स्वराज्य में राम का तप, कृष्ण का त्याग, गौतम की साधना और देवप्रिय सम्राट अशोक के धर्म-दिग्विजय की आभा दिव्य झलक रही थी। इसीलिए तो कोटि-कोटि भारतीयों ने 14 अगस्त की रात को 12 बजकर 1 मिनट पर स्वतन्त्र मेदिनी पर माथा टेक भव्य-भव्य विभूति से अपने को भूषित किया। कोई पूछे कि अंग्रेजों द्वारा श्मशान बनाए भारत की धरती पर विभूति कहाँ ? पर यह भूलना न चाहिए कि मरणमय श्मशान ही में नवसृष्टि, नवजीवन के बीज होते हैं। तभी तो तुलसीदास ने गाया है—"भय अङ्ग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी।"

बम्बई और दिल्ली में स्वराज्य के कारण जैसे परिवर्तन क्रान्तिकारी नजर आये वैसे भारत के दूसरे भाग में शायद ही दिखाई पड़े हों। एक रात के आधे ही भाग—12 बजे रात से 6 बजे सवेरे ही तक—जैसे सारे का सारा वातावरण ही बदल गया। लाल किले पर तिरङ्गा, कौंसिल और वायसराय हाउस पर तिरङ्गा—जिधर देखो उधर तिरङ्गा। बम्बई में अंग्रेज और अमेरिकन कम्पनियाँ बड़े-बड़े राष्ट्रीय झण्डे अपनी इमारतों पर सजाए लहराए। इवान्स फ्रेजर कम्पनी ने अपने भवन पर जो लम्बा अचल राष्ट्रीय झण्डा लगाया उसमें अशोक का धर्मचक्र विद्युत गति से संचालित था। व्हाइटवे लेडला लि०, आर्मी एण्ड नेवी कम्पनी, ताजमहल और अन्य बड़े-बड़े होटल, सेक्रेटेरियट, म्युनिसिपल भवन जिधर देखो उधर राष्ट्रीय रंग। मालवा के सामने समुद्र में स्थित छोटे पहाड़ी द्वीपों में इतनी दीपावलियाँ चमक रही थीं कि मालूम पड़ता था कि नक्षत्र लोक के छोटे-छोटे गाँव बम्बई की लड़ाई देखने के लिए नीचे उतर आये हों।

तीन दिनों तक लोगों ने दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा। प्रीति-सम्मेलन, संगीत-सम्मेलन, कवि-सम्मेलन, नाच, नाटक, सिनेमा—इतना उत्साह और आनन्द कि शहर में अंट नहीं रहा था और 15 अगस्त के सवेरे विद्यार्थियों का टार्च लाइट जुलूस निकला—बाइसकिलों पर, 1 बजे के बाद तो एक जुलूस कोई तीन मील लम्बा निकला, कांग्रेस हाउस से जिसमें अखिल बम्बई का सहयोग। बड़े और छोटे, बाल, युवा, वृद्ध, वनिताएँ, कुली, कुलीन, कलाकार, कलन्दर सभी मुक्ति के जोश से दीवाने कम्यूनिस्टों ने 42 में अंग्रेजों का साथ दिया हो पर आज तो प्रोग्रेसिव

(गतिवान) बने बड़े-बड़े झण्डे लिये राष्ट्रीय जुलूस ही में दिखाई पड़े। इतना हंगामा वर्पा रहा कि तीन दिनो कई आदमी तो कुचलकर मर गए और लोगो को मालूम भी नही हुआ कि कौन मरा या किसने मारा ?

17 अगस्त की शाम को छगन भाई खण्डूभाई दारूवाले की दुकान पर पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि दुकान बन्द है और खण्डू बाहर कुर्सी लगाये बैठा गुजरती भीड़ को देख रहा है।

"क्यों तुम्हारी भी दुकान बन्द !" छगन ने पूछा—"मार डाला तब तो, तीन दिनों से बिना घर गये मैं झण्डे ही बेचता रहा, इतने बिके कि रुपये बैंक ही मे रखे जा सकें, जेब मे नही—तीनों दिनो मे अस्सी हजार, पाँच सौ साठ रुपये हाथ लगे। अस्सी हजार की यह चेक है—बैंक बन्द होने के सबब एक मित्र को रुपये देकर उससे क्रास चैक ले लिया है, बाकी रुपये मौज मजे के लिए जेब में है, पर तीन दिनो से बाजार मे शराब ही नदारद। बोलो यह भी कोई समझ है फिर युद्ध मे भी साधु बनो और विजय मे भी। अमेरिका-रूस-इग्लैण्ड जैसे सभ्य देश होते तो ऐस मौके पर सारी होटलें सबके लिए खोल दी जाती और किसी भी युवती का यौवन रस कोई भी चखता। याद है ? अबीसीनियाँ विजय पर जब इटली के तरुण स्वदेश लौटे तब मुसोलिनी ने सारे रोम की तरुणियो को हुक्म दिया था वे वीरों को आलिंगन चुम्बन दें।"

"कुछ भी हो," खण्डूभाई दारूवाले ने कहा—"आज मैं तुम पर बहुत नाराज हूँ—साला मुझे भी जो झण्डा दिया, चीथड़ों का कच्चे रंग का ! सवेरे चन्द बूँदें पडी तो झण्डे के चक्र का मुँह लिप गया, फिर हवा चली तो तीनों रंग मिलकर एक हो गये। जरा ऊपर नजर उठाकर देखो और पहचानो कि यह किस देश का झण्डा है—सफल हो जाओ तो ठर्रा नहीं जानीवाकर ब्लैक लेबिल की एक पूरी और पुरानी बाटल नजर ! अरे चुड़ैल भी एक घर बख्श देती है।"

"देखो खण्डू भाई, बुरा न मानो।" छगन ने व्यापारिक गम्भीर मुँह बनाकर जवाब दिया—"धन्धा-रोजगार में सभी ट्रिक लगाते हैं। आमदनी असिल ईमान मे नही, ट्रिक से, युक्ति मे होती है। सीधी अंगुली से जब घी तक नहीं निकलता तब रोजगार कोई क्या कर पावेगा ?"

"तो करीब लाख रुपये के सड़े और कच्चे झण्डे मुहमागा दाम लेकर तुमने बेचे ! शैतान की दोहाई ! मैं समझता हूँ बरसात के एक ही छींटे में तुम्हारे बेचे सभी झण्डे भण्डेहर हो गये होंगे ?"

"यह बरसात साली जरूर बुरी रही," मुंह बिगाड़कर छगन ने मजूर किया—"शिकायतें चारों तरफ से होंगी। पक्के रंग झंडे भी तो बिक जाते ? फिर भी राष्ट्रीय झण्डा फीका पड़ा तो पड़ा, मेरी जेब मे रकम तो आ गयी। रकमदार के खिलाफ शिकायत भूलते चमक पसन्द दुनिया को देर नही लगती।"

"खूब काग्रेसी हो भाई !" तीव्र दाद दी खण्डू भाई ने—"चित भी तुम्हारी पट्ट भी तुम्हारी। छः महीने पहले जब 'शराब पीना पाप है' नाट्य के साथ गाधी जी का चित्र बाहर लटकाकर अदर चोरी से शराब बेचता था तब लेक्चर देते थे कि ऐसा करना घातक पाप है। पर आज ? ये नकली झण्डे ??"

"छ. महीने पहले मैं गधा था खण्डू भाई ! मजूर करता हूँ।" अपने कान पकड़कर छगन ने जवाब दिया—"पैसा तो फरेब से आता है— दगा से—चाहे जब जिस शक्ल मे वह हो। खैर, मैं दो दिनो से खोली नही गया —झण्डे बेचते-बेचते थक गया हूँ—कुछ पिलाओ मुझे।"

"एक सौ पचीस रुपये बाटल मिलेगी—" नखरे से झण्डू ने सुनाया— "कांग्रेसी सरकार ने आजादी की खुशी मे चार दिनो के लिए शराब की सारी दुकानें बन्द करा दी हैं। आप तो काग्रेसी—जानते ही होंगे ?"

"सवा सौ ले लो पर देना वही ब्लैक लेबिल जानीवॉकर ही।"

"मजूर ! बशर्ते कि पीने मे बन्दे को भी साझीदार बनाया जाय। तुम्हारे पास राजा इस वक्त माले मुफ्त है—घबराने की जरूरत नही।"

"यह भी मजूर ! चलो जल्द करो !"

दोनों दुकान में अन्दर दाखिल हो गये। दरवाजे अन्दर से बन्द कर दिए गए। पूरे दो घण्टे तक दोनों छकते रहे, फिर महकते और चहकते जब बाहर निकले तब छगन भाई मस्ती से खण्ड के गले में दाहनी बाँह डाले गा रहा था—

"पीके कल हम-तुम जो निकले
झूमते मैखाने से !"

और दोनों रोशनी देखने को चले। कितनी रोशनी उस दिन भी थी बम्बई में। लक्ष-लक्ष दीपावलियाँ ! ऊपर, नीचे अगल-बगल, मोटरों मे, ट्रामों में—कितना प्रकाश, कितने पुष्प, कितनी प्रसन्नता ! बिजली के धक्के से जलकर या भीड़ मे कुचले जाकर कई आदमी मर गए, सुना सबने, फिर भी स्वतन्त्रता की नवचेतना से चचल नाचते नवयुवक ट्रामो की छतो पर नाचते, गाते-चिल्लाते, सीटी, बाँसुरी, शंख और ढोल बजाते ही रहे। सड़कों पर चलना मुश्किल फिर भी आसानी से उस मुश्किल से लोग-लुगाइयाँ (भी) तैर रही थीं; धक्के खाती ! मन्दिर के धर्म-धक्के संकुचित, पर, स्वातन्त्र्य के कर्म-धक्के चौड़े ! मगर बहते पानी और भीड़ ही मे तो मल और निर्मल सीने से सीना सटाकर सरकते हैं ?

"देखो—खण्डू भाई व देखो—परियों का झुण्ड !" चूर छगन ने दूर पर घूरते हुए खण्डू को दिखाया—"स्वराज्य होते ही बम्बई स्वर्ग हो गयी और उतर आयीं अप्सराएँ। आज तो भारत में मुसोलिनी की जरूरत थी।"

"क्यों ? उस गड़े मुर्दे को उखाड़ने की आवश्यकता ?"

"उस झुण्ड की किसी एक सुन्दरी का चुम्बन अगर कर लूँ तो क्या होगा ?" बहका छगन।

"अजी होगा क्या, कांग्रेस का राज और तुम ठहरे कांग्रेसी। स्वराज्य में न तो कभी किसी का बाल बाँका हुआ है, न तुम्हारा होगा।"

"तो मैं तो एक को चिपटाता हूँ। तुम क्या करोगे ?"

"मैं तो भाग खड़ा होऊँगा। अरे मैं ! ऐसी ग़लती करना नहीं—नही तो इतने जूते पड़ेंगे कि जानीवॉकर की टाँगें टूट जायेंगी।"

मगर छगन की जेब में लाख रुपये, पेट में तेज शराब, मन में मोहक पाप—सो भी राष्ट्रीय पाप—वह सही-ग़लत समझने के नाकाबिल हो गया उस वक्त। झुण्ड की ओर बेतहाशा झपटकर एक तरुणी से वह लिपट ही गया !

खण्डू इतना मतवाला नहीं था—'पुराना' वह। छगन के व्यवहार मे

वह पहले घबराकर भागने पर आमादा, फिर भीड़ में उसकी क्या गति होती है, यह देखने की इच्छा से सौ कदम पीछे हटकर वह रुक रहा। देखा उसने आक्रमण के बाद ही शराबी छगन की चारों ओर घनीभूत होती भीड़—फिर शोर—फिर छगन का चीखना। शायद लोग उसे मार रहे थे—शायद वह मार डाला जाय—मार डाला गया क्या? क्योंकि भीड़ पुनः बहते दरिया की तरह स्वाभाविक चलने लगी। क्या वह कुचल डाला गया ??

खण्डूभाई सर पर पाँव रखकर भीड़ को चीरता, अपनी दुकान—परित्राण—की तरफ भागा और पहुँचते ही दरवाजे बन्द कर, मुँह बन्द कर, आँखें बन्द कर सो रहा।

सवेरे उठते ही गुजराती दैनिक में उसने पढ़ा कि—"प्रिन्सेस स्ट्रीट के नाके पर नशे से लड़खड़ाकर गिरने के सबब कोई शराबी पहले तो जनता के द्वारा कुचला गया, फिर राष्ट्रीय झण्डों से सजी शहीदों के चित्रों से सुशोभित एक मोटर-ट्रक के नीचे पिसकर उसकी लाश की ऐसी चटनी बन गयी कि शनाख्त करने की कोई सूरत ही न बच रही।"

"तो क्या पाप का दण्ड मिलता है? और इसी जन्म में?" प्रभात नवरंगी में देखो तो खण्डूभाई के चेहरे पर रंग नहीं !

मलंग

चाचाजी सारे मलंगपुर शहर के 'चाचाजी'। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी, छोटे-बड़े सभी चाचाजी को 'चाचाजी' ही जानते है। उनका और भी कोई नाम है, किसी को पता नही, नही पता लगाने की आवश्यकता ही।

हवा और पानी, प्रकाश की तरह चाचाजी सारे मलगपुर के प्राणो के रक्षक और पोषक—हिकमत और आयुर्वेद दोनों ही के चमत्कारिक दश्त-शफा या पीयूषमणि। वह संस्कृत पढ़े, फारसी पढ़े, अंग्रेजी में भी बी० ए० पास।

बी० ए० पास मात्र से चाचाजी का अंग्रेजी-ज्ञान नापना उचित न होगा। बी० ए० तो वहुत पास करते हैं, पर पढते हैं बडे शौक से विरले ही। चाचाजी का अध्ययन बड़ा विशद—बडा विविध। बात-बात मे वह बड़े-बड़े विदेशी और स्वदेशी विचारको, कवियो का उद्धरण दिया करते।

चाचाजी में सबसे बडा गुण एक—वह संसार को कुटुम्ब मानने वाले। वह सबका भला चाहते, सबको दवा देते। गंभीर रोगियों की सेवा-सुश्रूषा रात-रात भर जागकर भी चाचाजी करते। साल-भर पहले रौशनअली खाँ के लड़के नईमखाँ को कैसा भयानक कालरा हुआ था। सारे डाक्टरों ने जवाब दे दिया, खाँ साहब के घर में काला स्यापा छा गया, तब आये बे-बुलाए चाचाजी।

आते ही पहले उन्होंने रौशनअली खाँ को आड़े हाथों लिया—"अफसोस की बात है खाँ साहब ऐसे वक्त आपने मुझ नालायक को नही याद किया। आखिर मैं किस मर्ज की दवा था। मैं डाक्टर नही, नश्तरखाश नही, कड़वी

और कडी दवाए देने वाला भी नही खाँ साहब—तोबा-तोबा कर कहता हूँ—मैं परमात्मा का नाचीज़ बन्दा हूँ—घास वैद्य—जडी-बूटी, घास-पात, मिट्टी-राख याने खुदा के फजलोकरम से हर एक रोग को दूर कर प्रत्येक रोगी की खिदमत करता हूँ।" इसके बाद सारी रात सेवा औषधि और जागरण कर चाचाजी ने खाँ साहब के नौजवान लख्ते जिगर को बचा ही लिया।

मल्लू ग्वाले को एक ओर कोढ हुई, दूसरी ओर सारे के सारे गाहक छूट गये—कोढी से छूतछूया दूध कौन ले। इस कोढ मे खाज की कहावत पूरी हो गयी। लेकिन चाचाजी ने मल्लू ग्वाले को कभी अछूत न माना। मलंगपुर वालो को ललकारकर उन्होने सुनाया—"तुम लोग पागल हो, कोढ छूत का रोग नही है। ईसामसीह कोढियों का गला चूमा करते थे। वह पागल नही थे। फिर कोढ हो मल्लू ग्वाले को और उसकी रोजी बन्द कर मार डाला जाय सारे कुनबे को—यह भी कोई इंसाफ है यारो! रोगी दया का पात्र है, दया का, नफरत का नही। भूल किससे नही होती, पाप किससे नही होता, रोग किसे नही होता। अगर हम एक-दूसरे के रोग-सोग में काम नही आयेंगे तो अलग-अलग मर जायेंगे।" और चाचाजी ने मल्लू ग्वाले को भी चौचक्क चंगा कर दिया पर यह केस रौशनअली के फरजन्द की तरह दो ही एक दिन मे सफल नही हो सका। इसमें चाचाजी को छः महीने तक कडी नौकरी करनी पडी।

ऐसे दस-पाँच वाकयो के बाद तो चाचाजी का नाम मलंगपुर और उसके आसपास के सैकडो गाँवो तक धनवन्तरी और लुकमान की तरह मशहूर हो गया। जिस रोगी को देखो वही चाचाजी का मुरीद। सभी का रुख उन्ही के बंगले की तरफ। चाचाजी घर के खुशहाल। उनके स्वर्गीय पिताजी ने लकडी के धन्धे मे काफी पैदा किया था जिससे मलंगपुर में खासा-सा बंगला तो बनवा ही लिया, बैंक में भी जमा किये कोई सौ हजार रुपये। जमाना गुजरा चाचाजी के पिताजी भी गुजरे। जिस साल के जिस महीने में चाचाजी की शादी हुई और बहू का गृह प्रवेश हुआ उसी साल के उसी महीने के उसी दिन उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। सारे मलंगपुर ने कहा—"भगवान ही मददगार है, लडकी तो बड़ी कुलच्छनी

आयी !" मुर्दा फूंक कर मूड मुडाये आधी रात में घर पर आकर चाचाजी ने स्वयं अपनी स्त्री को देखा तो दाँतों तले अगुनी चबाकर रह गये —"भगवती, इतनी रूपवती !" इस पर चाचाजी ने तनक कर जवाब दिया—"भगवान किसी का भाग मुझ जैसा न बनावे—बन्दर के हाथों अगूर का गुच्छा लग गया !" मतलब यह कि देवीजी जितनी ही सुन्दरी थीं, चाचाजी वैसे ही असुन्दर थे। लम्बी नाक, छोटी आखें, विद्वत्तासूचक पतले होंठों वाला उदारतासूचक चौडा मुँह, शरीर मे सबसे बडा पेट, फिर खोपडी। हज़ार गुण होने पर भी कुरूप पति देवीजी को फूटी आँखों भी न सुहाया।

इधर चाचाजी के स्वभाव मे स्त्रैणता बिल्कुल नही। पत्नी की उपेक्षा को जैसे उन्हें अपेक्षा रही हो। अपना कुरूप उसे पसन्द न आने से गोया खसकम जहाँ पाक हो गया। अब हज़रत सारा दिन मर्ज और मरीज़ो के फेर में बिताने लगे। अक्सर देर करके रात मे घर लौटते और तब भी मरीज़ो का झुण्ड संग लगाये। असहाय अनाश्रित रोगियो को वह सहायता-आश्रय भी उत्साह से देते थे जिसे पत्नी बिल्कुल नापसन्द करती और रोगियों के सामने भी चाचाजी को डांट देती।

और चाचाजी पत्नी की डाँट सुन लेते—मन में उसके दुखों का कारण अपनी कुरूपता मानते हुए—"सचमुच अभागिनी के भाग्य फूट गये। बेशक ऐसी सुन्दरी को कोई श्यामसुन्दर नौजवान मिलना चाहिए था न कि मुझ जैसा कुरूपनिधान। दिनभर कुढ़ते-कुढ़ते अगर इसका दिमाग बिगड़ भी जाय तो क्या ताज्जुब।"

एक रात बात यहाँ तक बढ़ गयी कि चाचाजी जब मरीज़ों के झुण्ड के साथ आये और उनकी दवा विश्राम की व्यवस्था करने लगे तब घर से बाहर निकलकर जबरदस्ती उनकी पत्नी ने उन्हे अन्दर खीच लिया। घसीटती हुई सोने के कमरे में ले गयीं और पलग पर तक पहुँचाकर ही दम लिया। बिछी सेज पर कुरूप पति को बल से बैठा चाचीजी जब दरवाज़ा बन्द करने चली तब चाचाजी ने पूछा—

"कहाँ जाती हो ? मेरे पास आओ और जो भी कहना-सुनना हो जल्द कह डालो जिससे मैं उन रोगियों की देख-भाल कर सकूँ।"

"मर जायें रोगी—" दाँत पीसकर पत्नी ने कहा—"मुझ क्या चुड़ैल की तरह चक्कर काटकर अपने बंगले की पहरेदारी के लिए ब्याह कर लाये हो। तुम दिन भर घूमते हो, मैं कहाँ जाऊँ?"

"हिन्दुओं मे तलाक नही···।" खिन्न चाचाजी ने कहा—"नही तो मैं तुम्हे मुक्त कर देता। मुझे फुर्सत नही, तुम्हे चैन नही। मैं रोगी पसन्द, तुम भोगी पसन्द—असिल में पडित ने पत्रा गलत देखकर हमारे सम्बन्ध की स्वीकृति दे दी थी। तभी तो दोनो पक्षो को शान्ति नही।"

"सारे शहर की दवा जिसके पास," पत्नी ने वक्र ताना दिया—"उसके पास अपनी औरत की दवा नही।"

"औरत की दवा अश्विनीकुमारों या विधाता ने बनायी ही नही।" हँसकर चाचाजी ने कहा और उठकर स्त्री की कोमल कलाई पकडकर पलंग की तरफ खीचा—"दरवाजा खुला रहने दो, उन मरीजों का इन्तजाम करना है न। आओ, पास बैठकर जल्द बता दो कि क्या चाहती हो?"

"तुम्हारे मुह से बदबू आती है—पास मैं बैठ नही सकती; पर जाने नही दूँगी। मरें रोगी अभागे—तुम अब कमरे के बाहर नही जा सकते।" कहकर पत्नी ने दरवाजा सावेश बन्द कर दिया। फिर वह जमीन पर चटाई बिछाकर पड़ रही पर उस कुरूप पति के पलंग पर न गयी।

उस दिन पहली बार चाचाजी ने इस बात पर विचार किया कि ऐसी सुन्दर नारी का हृदय अगर जीता जा सके तो कम आनन्द की बात नही। उस दिन से पत्नी के प्रसन्नार्थ रोगियो को घर पर लाना बन्द कर दिया। स्वयं भी नियमित रूप से शाम होते ही घर लौटने लगे और जैसे कोई मचले बच्चे को चुमकारकर शांत करना चाहे वैसे ही वह चाचीजी को हर तरह से अपनी ओर आकर्षित करने लगे। गहने बनवाये, साड़ियाँ खरीदी, तेल और फुलेल खरीद कर नज़र किए। मगर पत्नी प्रसन्नार्थ उक्त कार्यों से न तो चाचीजी की लम्बी नाक छोटी हो सकी, न छोटी आँख बडी हो सकी, उनके चमगीदडी चीमड़ नाखूनी शरीर में खून का गुलाबी रंग भी तो न दौड पाया!

इसका चाचाजी को बड़ा गम रहा। गम अपनी खुशी का नही—वह

नाखुशी में भी खुश रह सकते थे, पर चाचीजी का रोतड़ा चेहरा देखते ही वह समझ जाते कि यह मेरी कुरूपता ही के सबब है। वह अक्सर सोचते कि यह शादी ठीक नहीं हुई, फिर भी चाचीजी दूसरे की होकर भी खुश रहें यह उदार विचार चाचाजी के मन मे कभी न आता। उन्हें मन ही मन विश्वास था कि आज नही तो आगे कभी न कभी उनका अन्तः सुरूप पहचानकर चाचीजी बाहरी कुरूपता क्षमा कर देंगी।

रोशनअली खां ऐसे बीमार गोया बचेंगे ही नही। सबके बाद चाचाजी से इलाज कराना शुरू किया। उन्हें फायदा भी महसूस हुआ। इलाज के सिलसिले में एक दिन बाजार मे हजार तलाशने पर भी सही गुलकन्द नहीं मिला। उस वक़्त चाचाजी रोशनअली के घर पर बीमार की तीमारदारी मे थे। उन्होने लड़के नईमखा को गुलकन्द लाने के लिए अपने बगले पर भेजा।

जब नईम बंगले पर पहुँचा तब घर का नौकर साग-भाजी लाने बाजार गया था और चाचाजी की सुन्दरी नहाकर चिकने, लम्बे, गझन बाल संवारती आईने मे अपना अद्भुत रूप निहार स्वयं सोच रही थी कि —मैं भी किस बन्दर के पाले पड़ी जो आदमी होकर आदमी नही, जवान होकर नौजवान नहीं नज़र आता—रानियों को लजाने वाला मेरा यह रतिरूप !

नईम ने दस्तक दी, देवीजी ने दरवाजा खोला यह सोचते कि नौकर सौदा लेकर आया है—

"इतनी देर क्यों लगायी ?" प्रश्न करने के बाद उन्होंने आगन्तुक को देखा। सुन्दर दर्शन नौजवान, अचकन, चूडीदार पाजामा, जरी के लाल जूते।

"मैं चाचाजी के कहते ही भागता ही तो चला आ रहा हूँ।" नईम ने उनकी तरफ अच्छी तरह तरेरकर जवाब दिया।

"चाचाजी !" गम्भीर होकर देवीजी ने कहा—"क्यों भेजा है उन्होंने —तुम्हें—आपको ?"

"गुलकन्द लेने के लिए। एक छटांक चाचाजी ने माँगी है।"

"गुलकन्द है तो पर जरा ऊँचे पाटे पर है। जरा ठहर जाइए, नौकर आता होगा।"

बैठक मे बुलाकर देवीजी ने नईम को कुर्सी पर बैठने का सकेत किया मगर वह भलमनसाहत का नाटक करता बैठा नही।

"बैठ जाओ, बैठते क्यों नही ?"

"आप खडी रहे तो मेरा बैठना बदतमीजी होगी। आप भी बैठें···।"

"मुझे काम है—पर यह नौकर नही गरियार बैल है—एक घण्टा हो गया गये और पास ही बाज़ार है। तुम—आप बैठो—मैं भी बैठती हूँ···।"

नईम बडा सुन्दर था, उसे देखकर देवीजी द्रवीभूत हो उठी। देवीजी भी सुन्दर थी। नईम खा ने इस नमकीन सत्य को ताडा। सभ्यता पूरी होने पर भी दोनो तरफ एक सनसनी सनकी।

"मुझे यहाँ बैठना मुनासिब नही।" वह उठी।

"मुझे भी देर हो रही है। चाचाजी और अब्बाजी दोनो ही इन्तेज़ार में होंगे।"

"पर गुलकन्द ऊँचे पर है, मेरे हाथ पहुँचते नही, नौकर बाजार जा मरा है।"

"मुनासिब समझें तो मुझे वह जगह बतलावें जहाँ गुलकन्द है, शायद मेरे हाथ पहुँच जायें।" नईम ने प्रस्ताव किया।

क्या यह प्रस्ताव है ? इसका समर्थन होना चाहिए या खण्डन। बडा सुन्दर नौजवान। बडा नीरस जीवन। नौकर बडा आलसी। हाँ-हाँ, कोई कब तक रुकेगा।

"चलो, तुम्हारे हाथ पहुँच सकें तो मटका उतार गुलकन्द खुशी से ले जाओ।"

आगे-आगे देवीजी, पीछे नईम, तीसरे कमरे मे गुलकन्द। दोनो वहाँ तक चुपचाप गये। वहाँ पता चला कि गुलकन्द नईम खा की पहुँच से भी परे था।

"अब ?" देवीजी ने नईम खाँ की तरफ देखा।

"अब ?" नईम ने भी आँखें मिला लीं।

"तुम तो बड़े लम्बे बनकर चले थे, मगर देखा गुलकन्द का मटका फिर भी दूर का दूर!" ताना दिया बरबस, देवीजी ने।

"गुस्ताख़ी माफ हो, आप और मैं दोनों अगर मिल जायें तो गुलकन्द की मटकी हमसे दूर नहीं।" नईम को खूब सूझी, पर देवीजी की समझ में नहीं आयी।

"मिलने के क्या मतलब?"

"मतलब यह कि गुलाम बैठ जाता है, आप उसके कन्धों पर खड़ी हों, बीमार की हालत पर रहम कर मटकी उतार दें।"

बीमार की मदद, भूखा मन, नौजवान के कन्धे, सन्नाटी कोठरी—यहाँ पाप कहाँ, बीमार की दवा का बहाना जो है। बिना आगे बोले आँखों ही से देवीजी राजी हो गयी। नईम घुटने टेक कर बैठ गया। दीवार से सटे शरीर को संभालती देवीजी उसके कन्धे पर चढ़ने लगीं—एक पैर—दूसरा भी। संभाल कर नौजवान ने बोझ को उठाया—कितना हलका-फुलका—सारी जिन्दगी कांधे पर लादकर ढोने के काबिल। गुलकन्द को भूल नईम बोझ की सोचने लगा। पसीने, पसीने।

देवीजी भी मटके की तरफ उठती मोत्र-सागर में मग्न। क्या पर-पुरुष के कन्धे पर उठना उचित? अनुचित क्या? बीमार के लिए अनुचित क्या? बस मे मेरा अपना कोई राग नहीं, रंग नहीं, लेप नहीं, वासना नहीं। पर कमरा कैसा एकान्त, तरुण कितना नौजवान, मन कैसा क्षण-क्षण बदलने, मचलने वाला।

"मिल गया मटका?"

"मिल गया—बड़ा वजनी है।"

"संभालियेगा—मैं धीरे-धीरे बैठता हूँ।"

"मैं काँप रही हूँ, बोझ भारी है।"

"मटका गिरेगा तो मैं नहीं उठूँगा, कपड़े खराब हो जायेंगे। जरा और संभालिये।"

"ओ माँ!!!!" देवीजी के हाथों से गुलकन्द यों गिरा कि नईम ऊँ सर से पाँव तक नहा उठा। इसके बाद वह खुद घबराकर कन्धे के नीचे की तरफ टूटी। अब गुलकन्द से नहाने का गम भूल नईम ने देवीजी को जमीन

से गिरने से बचाने के मोह मे अपनी भुजाओं में बांध लिया। उसके माथे का गुलकन्द देवीजी के आवेश से खुले होंठों पर तरातर टपकने लगा।

जिस वक्त देवीजी के मुंह से चीख निकली थी उसी वक्त नौकर सौदा लेकर बंगले मे दाखिल हुआ। तेजी से अन्दर पहुंचकर उसने देखा—भंडार घर में एक मर्द को देवीजी से उलझते। चोर का सन्देह उसे हुआ और शोर मचाना शुरू किया उसने। देखते-देखते सारा मुहल्ला जुड गया। नईम खां और देवीजी अभी सावधान भी न हो पाये थे कि चोर को पकड़ने के लोभ में मुहल्लेवालों ने उस कमरे का दरवाज़ा बाहर से बन्द कर दिया। अब देवीजी और नईम खां अन्दर, और बाहर एक हंगामा।

"पुलिस को बुलाओ।"

"पुलिस के पहले चाचाजी को बुलाना मुनासिब होगा। इज्जत की बात है। औरत बदमाश है तो क्या, खुद चाचाजी तो साधु है।"

"बेशक, बेशक!" सबने स्वीकार किया और कुछ चाचाजी को बुलाने झपटे।

उक्त घटना के दूसरे दिन चार-पाँच आदमियो की एक टोली चाचाजी के बंगले की तरफ सावेश बातें करती चली जा रही थी।

"नईम खाँ कितना बड़ा नालायक—जिन चाचाजी ने उसकी जान बचायी उन्ही की पत्नी पर डोरे डाले! दुनिया मे आदमियत तो अब रही नही गयी है।"

"ऐसे आदमी का गला काट लेना चाहिए।"

"देखा नही उसी के बाप रोशन खाँ का मुंह कल—मारे शर्म के—स्याह पड गया था। खुद चाचाजी ने रोका नहीं तो मर्द रोशन खाँ ने नालायक बेटे का खून कर डाला होता!"

"खुद चाचाजी ने रोका नही तो कल मलगपुर में खून की नदी बह गयी होती—सिख और हिन्दुओ ने मुसलमानो के मुहल्लों मे हाहाकार उठाकर चाचाजी की बेइज्जती का बदला लिया होता।"

"मगर साधु-स्वभावी चाचाजी को बदले की भावना छू तक नही गयी है। कमरे का दरवाजा खुलने पर वह अपनी पत्नी या नालायक नईम पर

शब्द या इशारे से भी नाराज नही मालूम पडे। पहले देवीजी को उन्होंने गुलकन्द से लिसलिस कपड़े बदलने को कहा और फिर नौकर को आज्ञा दी कि नईम खा को वह गुस्लखाने की राह दिखाये। हिन्दुओं द्वारा बहुत क्रोध दिखाये जाने पर उन्होंने गम्भीर भाव से कहा—"पहले समझ लेना चाहिए घटना या दुर्घटना क्या है ! कल 15 अगस्त है, भारत को स्वराज्य मिलने वाला है। ऐसे मौके पर बे-बात की बात पर आज मलंगपुर मे कौमी दगा हो जाय तो सारे देश पर उसका प्रभाव बुरा पड़ेगा।" इस पर लोगोंने जब आग्रह किया कि पापी नईम को पुलिस के सुपुर्द कर दिया जाय तब सर हिलाकर ना करते हुए चाचाजी ने कहा—"अब स्वराज्य हो गया। अब हमें पंचायतो पर विश्वास करना चाहिए, न कि अदालतो और पुलीस पर। सबसे वडी पुलीस लोकमत है।" इसके बाद उसी वक्त चार पच चुने गये जिसके सरपंच निर्वाचित हुए स्वयं चाचाजी। पंचों मे अभियुक्त का बाप रोशन खां भी और कल ही सबने एक राय से चाचाजी को पूर्ण अधिकार दे दिया कि स्त्री और पुरुष दोनो ही की परीक्षा कर वह जो चाहे वही निर्णय दण्ड या मुक्ति दें—"बखुदा चाचाजी !" रोशन अली ने डबडबायी आँखो से जमीन की तरफ देखते हुए कहा—"इस नालायक को कत्ल की सजा भी अगर आप देंगे तो गर्दन उसकी काटेगा बन्दा—अपने हाथों ताकि आने वाली पीढी पर नुमाया हो जाय कि नालायक का कोई बाप नहीं—खुदा नही—और बेवकूफ लोग बुराई करने के कब्ल ही तोबा कर लें।" सच कहें तो रोशन अली इन्साफ पर था।"

"पर रोशन अली का वह रुख मलंगपुर के मुसलिम लीगियों को सुहाया नही। मैंने सुना कुछ मुसलमान खुले आम कहते फिरते है कि नईम खां ने बुरा नही अच्छा किया और अब वह औरत हिन्दू नही मुसलमान है। आज अगर चाचाजी ने नईम खां को कोई कड़ी सजा दी तो कुछ मुसलमान सामना करेंगे।"

"सामना करेंगे तो समझ लिया जायगा। मलंगपुर के हिन्दू कुछ चूड़ियों का धन्धा नही करते। चाचाजी जितनी चाहें उतनी सख्त सज़ा परस्त्रीगामी को दें।"

"अच्छा, तुम सरपंच होते तो ऐसे गुनहगार को क्या दण्ड देते ?"

"कुत्तों से नुचवा डालता।"

"शास्त्रों में व्यवस्था है—विष्ठा के गढ़े में डुबोने और कुछ मल खिलाने के बाद ऐसे नीच की गर्दन काट डालना।"

"मुसलमानी वक्तों में भी प्राणों से ही परायी औरत ताकने के पाप का प्रायश्चित्त होता था।"

"चाचाजी दण्ड देंगे और उचित, क्योंकि वह संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी तीनों भाषाओं के विद्वान हैं और तीनों की व्यवस्था पद्धति से परिचित हैं।"

इस तरह गाल मारती जब यह टोली चाचाजी के बंगले पर पहुँची उस वक्त वहाँ पूरी भीड़ इकट्ठी थी—हिन्दू मुसलमान और सिखों की। सभी उत्तेजित मालूम पड़ते थे, मालूम पड़ता था हवा में जोश, कब क्या हो जाने का अन्देशा। बंगले के बरामदे में बड़ी चौकी थी—जिस पर चार पंचों के साथ सरपंच बैठे थे। पंचों की दाहिनी ओर देवीजी बैठी थी, बायीं ओर नईम खाँ। सबके जुड़ जाने पर विनय से नम्र और गंभीर चाचाजी उठे अपना फैसला सुनाने। फैसला लिखित था। वह अविकृत सुस्पष्ट स्वर से पढ़ने लगे—

"कल जो कुछ हुआ," चाचाजी के शुरू करते ही एकत्र लोगों में बिलकुल सन्नाटा छा गया—"कल जो कुछ हुआ, मैंने अच्छी तरह से जाँच करके यही समझा है कि उसमें नईम खाँ या मेरी पत्नी का कोई दोष नहीं और सारे समाज की दृष्टि का दोष मात्र है। स्त्री सती हो तो क्या कहने, पुरुष का जीवन शिवाकार हो जाय। पर सतीत्व जबरदस्ती अबला के माथे पर बला की तरह लादने की चीज नहीं। सतीत्व तो हृदय से, प्रेम से, सद्-बुद्धि से पैदा होता है। स्वतन्त्रता मर्दों ही के लिए नहीं, औरतों के लिए भी उतनी ही जरूरी है। आधे अंग के परतन्त्र रहते कोई स्वतंत्रता का सर्वांगीय उपभोग नहीं कर सकता। सो, नईम के साथ कार्यवशात: सुन्दरी कमरे में जाने के लिए मेरी देवीजी सर्वथा स्वतंत्र थी गोकि नौजवान के साथ नव-युवती को एकान्त में रहना खतरनाक बात है यह सबको जानना चाहिए। मगर हम सब नहीं जानते। इसका कारण शिक्षा का अभाव जिसका कारण विदेशी राज का प्रभाव है। फिर भी नवयुवती स्त्री को नवयुवक के साथ

एकान्त में जाने मे शील-संकोचमय भय होना ही चाहिए। पर—खेद की बात है कि मेरी देवीजी के मन में ऐसी कोई भावना न उठी। एकान्त में जाने ही तक नही, परपुरुष के कन्धों पर चढ़ने तक उनका शील कांपा नही। मैं नही मानता कि इस गुलकन्द उतारने मे बीमार के प्रति भूतदया मात्र थी। मैं इसमे कुछ कमजोरी भी मानता हूँ।

"लेकिन मित्रो !" और भी स्पष्ट स्वर से चाचाजी पढ़ने लगे—"उक्त कमज़ोरी देवीजी की नही, मेरी है। मैं इनके बिलकुल नाकाबिल—आप हम दोनों की शक्ल ही से समझ सकते हैं। इतने पर भी भाग्यवान होता तो मैं सुखी रह पाता, पर देवीजी का प्रसाद प्रेम पात्र मैं कभी न हो सका। यह मेरा दुर्भाग्य है जो गृहलक्ष्मी के निकट रहने पर भी मैं दारिद्र्य की मूर्ति बना फिरता हूँ। मुझे अपनी कोई चिन्ता नहीं। सारे देश के दरिद्र होने से दरिद्र बन कर रहने ही मे न्याय मालूम पडता है—ऐसा लगता है गोया मैं भी सबके साथ सबका हूँ। पिता की कृपा से मुझे घर और घरनी मिली तो, पर मैं चाहता दोनों ही को नही। मैं बराबर इस चिन्ता में था कि कोई ऐसी युक्ति मिले कि मैं बेफिक्र हो जाऊँ और देवी रहे प्रसन्न। अखिर मे कल की घटना ने मुझे प्रकाश दिखाया है। आज मैं प्रकाशमय हूँ। आज सारा भारत प्रकाशमय है। आज स्वतंत्रता का दिवस है। आज हरेक भारतीय स्वतंत्र है। आज देवीजी स्वतंत्र हैं, नईम खाँ और बन्दा भी। मैं लिख कर अपनी पत्नी को नईम खाँ से शादी करने की स्वतत्रता देता हूँ और शादी के बाद ये लोग नाशाद न रहें इसलिए अपना बंगला और पचास हजार रुपये भी देता हूँ। इस सबके बाद मै दुआ—आशीर्वाद देता हूँ कि जिसे मैं खुश न रख सका, उसे नईम खाँ खुश रखे, खुदा खुश रखे। बंगले की रजिस्ट्री मैंने देवीजी के नाम कर दी है, रुपये भी उन्ही के नाम बैंक मे जमा कर दिये है—चेकबुक और कागजात ये है।"

और मलंगपुर शहर की तारीफ अभी मैंने की नही। यह शहर अमृतसर लाहौर के बीच हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की सीमा से आठ मील के फासले पर हिन्दुस्तान में है। आज शहर की आबादी क्या होगी—शैतान ही जानता होगा, पर जब की बात मैं लिख रहा हूँ तब मलंगपुर की आबादी पचास हज़ार प्राणियों की थी जिसमे पचीस हज़ार सिख, सात

हजार हिन्दू और अठारह हजार मुसलमान थे।

मलगपुर वालो का विश्वास है कि उस शहर मे सदियो से कोई न कोई मलंग हमेशा होता आया है। यह मलंग क्या? मुसलमानो के एक तरह के फकीर को मलंग कहते हैं। ये मलंग मानव मात्र के कल्याणकामी और अन्तर्यामी के अनन्य उपासक होते हैं। बम्बई के आस-पास हाजी मलग कितने मशहूर हो गये है। उनकी मज़ार की जियारत को लाखो आदमी जाते हैं और मुसलमान ही नही, हिन्दू, ईसाई, पारसी सभी जाति के दुखी और श्रद्धालु। कहते है बाबा हाजी मंगल से जो माँगो वही मुराद पूरी करते हैं। सुनता हूँ बम्बई के जुआडी तक हाजी मलंग से सट्टे के अंक तक माँग लाते हैं। जो हो'''पर यह बात मलंगपुर के बारे मे भी सच कि सारे पजाब मे जहाँगीर के जमाने से आज तक हजार बार हिन्दू, मुस्लिम, सिखो के दगे-फसाद हुए होगे और मलगपुर में कभी कुछ न हुआ। क्योकि वहाँ हमेशा एक न एक मलंग उपस्थित रहता, इन्सानो को मजहब के नाम पर मर-मिटने से बचाने के लिए मजहब के सही मानी-मुहब्बत समझाने के लिए। मलगपुर मे जब जो सर्वहित चिन्तक, गरीबपरवर हुआ उसे लोगों ने मलंग ही माना। जहाँगीर से जवाहरलाल तक वहाँ सैकडो मलग पैदा हुए, आये और मरे जिनमे मुसलमान, सिख, हिन्दू सभी थे।

इधर बरसों से मलंगपुर वाले चाचाजी ही को मलंग मान लेने की सोच रहे थे और उस दिन तो उनके मलंग होने मे किसी को भी शक न रहा जिस दिन अपनी बीवी और बंगला और बैंक एकाउण्ट नौजवान नईम खाँ को मुस्कराते हुए सौंप दिया। पंजाब में, इन दिनो, यह मामूली काम न था। मलंगपुर लाख शान्त था पर कलकत्ता, नोआखली, बिहार, रावल-पिण्डी की घटनाओं से मन ही मन वहाँ वाले भी खौल रहे थे। ऐसे मौके पर जब हजारो के सामने चाचाजी ने अपना सब कुछ एक मुसलमान को सौंपा, तो बड़ा विरोध किया उनका हिन्दुओ ने, आर्यसमाजियों ने। "हिन्दू की लडकी मुसलमान के घर इस तरह हर्गिज नहीं जायेगी।" एक ने तो ललकार कर सुनाया—"चाचाजी आपका यह निश्चय ऐसा ही है जैसा राष्ट्रीय मतवाले कांग्रेस नेताओ का, उन्होने आधा देश जैसे जिन को दे दिया वैसे ही इस आवारे नईम खाँ को आप अर्द्धांगिनी अपनी दिये दे रहे हैं।

औरत भी इन्सान है चाचाजी, थान पर बंधने वाला पशु नहीं जिसे आज मौलवी और कल कसाई को आराम से सौंपा जा सके।"

"चुप रहो रामानन्द !" नाम से पुकार कर चाचाजी ने तीव्र स्वर से उसे चुप किया—"औरत अगर बांधी नहीं जा सकती तो उसे मुक्त करना ही ठीक। इसमें मुसलमान-हिन्दू का झगडा घुसेड़ना फिजूल। यह पंजाब है, यू० पी० नहीं, बिहार नहीं जहाँ हिन्दू लड़की का मुसलमान के घर या मुसलमान युवती का हिन्दू के घर आना भूकंपकारी हो। यहाँ तो द्वेषवश ही सही मगर सदियों से मुसलमान हिन्दुओं की और हिन्दू मुसलमानों की औरतें उडाते, बहकाते, शुद्ध करते घर में रख लेते हैं। मैं कहता हूँ अब स्वराज्य हो गया, हमें फिरकेवाराना ढंग से सोचना बन्द करना चाहिए और सबको हिन्दुस्तानी मानना चाहिए न कि हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई या पारसी। स्वराज्य की इस मंगल वेला में जाति-पाँति को नष्ट करने वाली यह पहली घटना हो। जब तक दुनिया भर के इन्सान अपने को एक ही परिवार का न समझेंगे तब तक विश्व कल्याण असम्भव है। अलग-अलग बड़ाई के फेर में हम एक-दूसरे को किसी दिन नष्ट कर डालेंगे। दुनिया को एटम बम से बचने की इसके सिवा आज कोई दूसरी तरकीब नहीं कि सभी अपने को एक ही परिवार का प्राणी प्राणपण से मानने लगें। पूर्वी और पछाँही, गोरे-काले और पीले, पूंजीपति और कम्युनिस्ट भारत स्वतंत्र हुआ, विश्व के सोये हुए आध्यात्मिक प्राण चैतन्य हुए, प्रकाश फैल रहा है, अब कोई अन्धकार और नींद में क्यों रहे।"

उत्तेजित चाचाजी ने दूर पर खड़े छोकरों को संबोधित कर कहा—"बोलो बेटो, स्वराज्य हो गया—जय हिन्द ! जय इन्सान !!"

इस तरह चाचाजी ने अपना सर्वस्व नईम खाँ को सौंप दिया, सभी दंग रह गये। सभी हैरान। खासकर तब जब उसी दिन से चाचाजी ने बंगले में रहना छोड़ धर्मशाला में रहना शुरू किया पर लोगों ने बाहर-बाहर इतना ही देखा। अन्दर ही अन्दर चाचाजी पर उस घटना, उस सुन्दरी, उस सम्पत्ति त्याग के बाद क्या गुजरी यह परमात्मा ही जानता होगा। उन्होंने सोचा कि त्याग तो किया मगर औरत से हारने पर। हार का त्याग भी कोई त्याग है ! वह मिलती तो जीवन कितना मोदक होता। वह

न मिल सकी तो अंगूर खट्टे हो गये। फिर भी उन्होंने सोचा, इस त्याग से इतना तो फायदा हुआ कि दुनिया दर्देनर गया। अब प्रिय नहीं, परिवार नहीं, धन नहीं, बाजार नहीं—केवल मैं ही मैं हूं।

चाचाजी ने बंगला छोड़ते वक्त अपनी दवाएं तक छोड़ दी पर एक डिब्बी वह टेंट में लेते गये। उसमें कोई सवा तोले अफीम थी। उन्होंने सोचा शायद किसी रोगी को आज ही जरूरत पड़े। पर स्वयं उनका विश्वास विष चिकित्सा पर था नहीं, भस्म भले कभी दे दी हो पर 'रस' तक वह रोगियों को नहीं देते थे। फिर यह अफीम किस रोगी के लिए उन्होंने ली।

धर्मशाला के फाटक पर सारी रात चाचाजी करवटें बदलते रहे। वह सर्वस्व त्याग की पहली रात थी। सब कुछ छोड़ देने पर भी उनके मन को विश्वास नहीं होता था कि उन्होंने जो कुछ किया वह हो गया। अभी देवीजी वहाँ थीं—मन के अन्तरतम में—मोहक मुस्कराती हुई कहतीं—"बदशक्ल। संसार में सौंदर्य स्वरूप वालों ही के लिए है न कि तुम अभागे के लिए!" सचमुच अभागा उन्होंने अपने को माना, सोचा जिसका कोई नहीं, वह भी कोई आदमी! घर गया, घरनी गयी, अब मैं ही क्यों रहूँ शिथिल शरीर का भार ढोने के लिए। यह अफीम तो है न। दूसरे किसी के लिए नहीं, इसे मैं अपने ही इलाज के लिए लाया हूँ। सबको काष्ट औषधियों से चंगा करने वाले की चिकित्सा विष ही है।

जोश की बेहोशी में चाचाजी सवा तोले अफीम चबा गये गुड़ की तरह और फिर नींद या मौत की इन्तजार में सोकर जागने लगे। पर न तो सारी रात उन्हें नींद आयी न मौत ही। बल्कि तेज नशे ने मोहमय स्वार्थ से कठोर हृदय को कोमलतर कर दिया। पूर्ण नशे में चाचाजी सोचने लगे कि मरने के प्रयत्न में विष खाकर उन्होंने कायरता की। जीवन का मैदान हारने पर भी शहीद बनने के लिए नहीं, प्रेम के अलावा दूसरे किसी भी बंधन से औरत को बाँधना इन्सानियत के खिलाफ है। सुख अगर दुनिया में हो तो पहले सबके लिए हो फिर अपने लिए, मैं देवीजी की नादानी या नईम खाँ की नौजवानी से जलूँ क्यों जब कि सभी अपने कार्यों द्वारा एक सुनिश्चित दिशा की तरफ जा रहे हैं और वह दिशा मुक्ति ही है

तव मैं किसी की प्रसन्नता का साधक न वन बाधक क्यों वनूं। पहले मैं सबको देकर भी देवीजी से कुछ चाहता था। आज मैं किसी से कुछ भी नही चाहता। भिखारी आज शाह है जिसकी शान सर्वस्व दे देने पर भी कुछ भी न लेने ही मे है।

यही सोचते-सोचते चाचाजी सो गये और दिन निकल आने तक खर्राटे भरते रहे। जागे तव जव शहरपुर के घुमक्कड़ लड़कों ने उन्हें अच्छी तरह से झकझोर कर शोर मचाया—"जय हिन्द चाचाजी! स्वराज्य हो गया।" इस तरह वह कभी धर्मशाले, या मन्दिर के फाटक पर पड़ रहते, कभी किसी मसजिद की सीढी पर। अब मलंगपुरवासियों के मन मे चाचाजी के लिए अटूट श्रद्धा, उनकी साधुता के प्रति अडिग विश्वास हो गया। पहले दवा-दारू वैद्यगी के नाम चाचाजी सिवा देने के किसी से कुछ भी न लेते थे, पर अव उन्होंने अपनी फीस वाँध ली, यह कहकर कि—'इन्सान को हमेशा मिहनत से कमाकर खाना चाहिए और भीख न माँगना चाहिए।' मगर फीस चाचाजी की क्या—एक पैसा—महज़! पर कमाल तो देखिए! गृहहीन सर्वस्व त्यागी को भरसक मदद देने मलंगपुर का एक-एक बच्चा दौड़ा। झूठे ही लोग चाचाजी को हाथ दिखाते और एक पैसा नज़र करते। इस तरह शाम तक उनकी झोली मे पचीसों-पचासों, सैंकड़ों रुपये के पैसे इकट्ठे हो जाते। ये पैसे वह बच्चों में बाँट देते। बच्चे प्रसन्नता से किलकते चिल्लाते—"जय हिन्द चाचाजी! स्वराज्य हो गया!" और चाचाजी को बड़ा आनन्द आता। वह मुस्कराते, पुलकते, छलछला उठते। जुटने वाले सारे पैसे चाचाजी वाँट ही नही देते—कुछ की अफीम भी लेते। उस रात के बाद वह बराबर कसकर अफीम खाने लगे। पहले सवा तोला फिर डेढ, फिर दो—लोगों को ताज्जुब होता कि वह इतनी अफीम कैसे हजम कर जाते। लोगों को मालूम न था कि दक्ष की बेटी के सती हो जाने के वाद ही महादेव ने हलाहल पान कर लिया था। पर महादेव मरे नहीं' क्योंकि वह सबके शुभ करने वाले विश्वनाथ थे। शायद सबका भला चाहने वाले पर दुनिया का विष असर नही करता। सबको जीवन देने का आकांक्षी मर नही सकता।

चाचाजी के सर्वस्व त्याग और जीव मात्र की भलाई चाहने पर भी अगर मैं यह लिखूं कि पश्चिमी या पूर्वी पंजाब का कोई शहर पिछले दिनों गुंरेजी मे खाली रहा तो गलतबयानी होगी। चाचाजी के व्यक्तित्व का असर इतना ही बहुत रहा कि दो महीने तक मलगपुर मे चारों तरफ गडबडी रहने पर भी ऊपरी शान्ति रही। पर अन्दर ही अन्दर पागल समाज अवाँ की तरह सुलग और तप रहा था।

और एक दिन पाकिस्तान से प्राण लेकर भागने वाले कोई पचास सिख मलंगपुर आये। उन्होंने पश्चिमी पजाब मे हिन्दू सिखो पर मुसलमानो द्वारा तोड़े गये सितमों की ऐसी भयानक और खून मे लथपथ कहानियाँ सुनायी कि सारे शहर के हिन्दू सिख खलबला उठे। तिस पर किसी ने यह अफवाह फैला दी कि मगलपुर के मुसलमानो के पास लाहौर के पाकिस्तानियो ने वक्त पर काम आने के लिए भारी भर हथियार भेजे हैं।

"मैं कहता हूँ, धोके में मार खाने मे खुलकर लड़ लेना भला," एक सरदार जी ने राय जाहिर की।

"मगर चाचाजी जो हैं, इनके जीतेजी यहाँ मुसलमानों पर कोई हाथ भी नहीं उठा सकता।"

"चाचाजी ज्यादा से ज्यादा साधु-सन्त है," एक आर्यसमाजी ने सावेश कहा—"सियासत वह क्या जानें। राजनीति में उनकी राय क्यों मानी जाय? इस वक्त हिन्दू, मुसलमान एक दूसरे को खा जाने की कोशिश में हैं, इनमें जो चूकेगा वही अन्त में बुरा पछतायगा।"

"यहाँ बात बढ़े तो," एक ने कहा—"पहले चाचाजी के बंगले पर धावा कर उस नईम खाँ का सफाया करना होगा जो गुण्डई से हमारे सजातीय का सब कुछ लूटकर सीने पर मूँग दल रहा है। चाचाजी समझें या न समझें पर हिन्दू का माल हिन्दू खायगा—हम मुसीबतजदे खायेंगे न कि वह शैतान बेईमान।"

ऊपर की बातों के दूसरे ही दिन देखिए तो चाचाजी पाकिस्तान के सताये हिन्दुओं सिखों को सौ-सौ रुपये के नंबरी नोट देते—"लो! पचास हजार रुपये उन्हे दिये तो उतने ही अभी और है जो तुम्हारे लिए है। अब तो मुसलमान हिन्दू बराबर हुए? अब तो तुम लोग मारधाड़ न करोगे?"

इस तरह एक बार और चमत्कारपूर्ण त्याग से चाचाजी ने मलंगपुर को रक्तस्नान से बचाना चाहा और किसी हद तक बचाया भी। ऐसी रकम के इतने नोट इतनी आसानी से बाँटना जैसे हवा पतझड़ के पत्ते लुटावे—मामूली काम या बात नहीं। फिलहाल आदमी सब कुछ त्याग सकता है पर रुपये नहीं। चाचाजी के कर्म से पुन: मलंगपुर में आध्यात्मिक, शाश्वत, हृदय को छूने वाला वातावरण पैदा हो गया पर क्षणिक, क्योंकि उनकी अनुपस्थितियों में वह शान्ति कायम न रह सकी। किसी लाचार रोगी की दवा के लिए तीन दिनों को चाचाजी के मलंगपुर से बाहर निकलते ही शहर की हवा गर्म होने लगी यहाँ तक कि उनके लौटने के एक दिन पहले साम्प्रदायिकता की आग सारे शहर में लग चुकी थी। हिन्दू, मुसलमान, सिख सबने एक दूसरे के घर में आग लगा सचमुच घर फूँक तमाशा देख लिया था। गोकि उस वक्त तक हिन्दू सिख मजबूत थे, दूसरे पक्ष का नुकसान गहरा हुआ था। बहुत से तो मारे ही गये, जो बचे वह तेजी से पाकिस्तान की तरफ भाग गये।

फिर भी मलंगपुर के सिख-हिन्दू भयभीत थे। इसीलिए कि सीमा के उस पार से आक्रमण होने का पूरा भय था। मलंगपुर के हिन्दुओं ने अमृतसर से सैनिक मदद माँगी तो है पर उसके आने के पहले ही अगर उस पार के मुसलमान टूट पड़े तो ? इसी भय से अभिभूत हिन्दू और सिख तेजी से अपने बाल-बच्चे मलंगपुर से हटा रहे थे। तब तक लौटे चाचाजी। तीन ही दिनों में उन्होंने शहर को कितना बदला हुआ पाया। मुहल्ले के मुहल्ले जले खाक। शहर में एक भी मुसलमान नहीं। नईम खाँ को मार उत्तेजित जन समूह ने चाचाजी के बंगले में भी आग लगा दी थी और देवीजी लापता थीं।

चाचाजी बड़े दुखी हुए। दुखी हुए इन्सानों के आपस में इस तरह हैवानों से भी बदतर लड़ने पर उन्होंने दोनों पक्षों को भला-बुरा कहा, मगर ज्यादा सहानुभूति उनकी उसके प्रति हुई जिसे कष्ट ज्यादा मिले, जिसका नुकसान ज्यादा हुआ। सचमुच चाचाजी सारे शहर को एक बड़े परिवार-सा मानते थे। फिरकेवाराना खयाल उनके मन में था ही नहीं। हिन्दुओं की गतिविधि पाते ही वह मुसलिम मुहल्लों में अकेले जाकर

चक्कर काटने लगे, पर सारे दिन घूमने पर भी एक भी आदमजात उन्हे दिखाई न दिया, सिवा मुर्दों के। हाँ, शाम के वक्त 'दरगाह बावरशाह' से एक कराह उन्हे सुनायी पडी। अन्दर जाकर देखा एक घायल, भूखा, प्यासा मुसलमान जिसके जख्मों से अभी तक खून टपकता। तुरन्त ही चाचाजी सेवा मे जुट गये। दरगाह की बावड़ी से पानी लाकर उसकी प्यास बुझायी, जख्म धोये, एक जड़ी रगडकर लेपा भी, पर खून का जाना बन्द न हुआ, टिंचर आइडीन होता तो ठीक हो जाता लेकिन वह उनके पास नही। आसपास उजाड। उन्होंने सोचा हिन्दुओं की बस्ती से जाकर लाने का। वह चले भी—पर इसी वक्त उधर से गोलियों की तड़तड़ाहट और गुलगपाडा सुनायी पड़ा—भयानक हाहाकार, लडाई फिर छिड़ गयी। चाचाजी ने सोचा—ऐसी हालत मे मरीज को छोड़ कर जाना ठीक नही। वह पुनः दरगाह बावरशाह मे लौट आये और तरह-तरह की तरकीबो से जख्म से खून जाना बन्द करने लगे। उधर शोर होता रहा, उधर दवा होती रही। न तो शोर रुका, न जख्मों मे से लहू का जोर! शहर डटकर मरकर, उजड़कर श्मशानी सन्नाटे में आने लगा, मरीज की नब्ज डूबने-सी लगी। इस वक्त तक चाचाजी अपना पूरा कुरता और तीन-चौथाई धोती फाड-फाड़ कर मरहम पट्टी, पानी मट्टी में खपा चुके थे, महज एक लगोटी लगाये, मरीज की सुश्रुषा कर रहे थे। इस स्थिति में आते-आते उन्हे सब कुछ भूल गया था। भूल गया था कि मंगलपुर मे है, जहाँ दगे हुए और इस वक्त भी हो रहे है। याद थी केवल एक बात—उस घायल प्राणी की जिन्दगी। भगवान! यह मरे नहीं पर जिये तो कैसे जब रक्त का जाना रुकता ही नही और उचित दवा ही नही। अन्धकार चारों ओर, प्रकाश कही नही।

इसी समय प्रचण्ड प्रकाश की दर्जनों किरणें चाचाजी और मरीज मुसलमान को घेर कर नाच उठी। दरगाह के फाटक के पास से टार्च लाइटों से कुछ लोग अन्दर की जाँच कर रहे थे।

"कौन है?"

"गोली मार दो!"

"बन्दूक हर्गिज न चले, यह बुजुर्ग की दरगाह—कौन जाने वे लोग

मुसलमान ही हों।"

टार्च वाले नज़दीक आये तो चाचाजी ने पहचाना वे मुसलमान सिपाही थे। वह डरे नहीं, बल्कि बाग-बाग हो उठे सिपाहियों को देखकर —"खूब आये, तुम्हारे पास तो टिंचर होगा, बिना टिंचर के यह बेचारा आदमी मरा जा रहा है।"

"तुम कौन ?"

"खुदा का नाचीज़ बन्दा।" चाचा जी ने जवाब दिया।

"शक्ल तो—मआज अल्ला—शैतानी है।" एक ने मजाक किया।

"शायद कोई फकीर हो, मज़ाक न करो।" दूसरे ने डाटा—"यह बुजुर्गों की मज़ार है। सारे शहर में यही पर तो दो मुसलमान मिले। घायल को सरहद की तरफ़ 'जीप' मे झपट कर ले जाओ, इस फकीर को लेकर हम लोग मार्च करते हुए उस मैदान की तरफ़ आते हैं, जहाँ लूट का माल और औरतें इकट्ठी है। बड़े मिया !" उसने चाचाजी से पूछा—"तुम्हारे कपड़े क्या हुए ?"

"कपड़े मरहमपट्टी के मसरफ में आ गये—दूसरा कोई चारा न था !"

"सुभान अल्ला !" उछल पड़ा वह तगडा मजबूत पजाबी मुसलमान —"खुद नगा हो आपने अपने कपड़े मरहपट्टी मे लगा दिये ! सुभान अल्लाह—हजरत, आप मलंग है मलंग।"

दल के साथ मैदान में आते-आते चाचाजी को मालूम पड़ा कि इस बार मुसलमानों ने भी कसकर बदला लिया। हज़ारो सिखों को भागने से पहले ही घेर कर मार डाला, सैंकड़ो हिन्दुओ को भी। घर-घर से ढूँढ़ कर औरतें निकाली गयी। सबका सब कुछ लूट लिया गया। मगर लुटेरों के पास इतनी लारियाँ न थी कि लूट का माल भी ले जाते और औरतें भी। दोनो में से माल को ले जाना पहला फ़र्ज माना गया। ट्रकें भरी जाने लगी। लेकिन इतने ही मे सिखो ने जवाबी हमला कर दिया। शायद अमृतसर से कुमक आ गयी। चारों ओर गोलियाँ-गोले ओलों की तरह बरसने लगे। मुसलमान दस के सामने प्रश्न यह उपस्थित हो गया कि क्या लेकर भागे—दुश्मनों की औरतें या माल या अपनी जान। वे हिन्दुस्तानी की सीमा मे थे अपने रग में दुश्मन के घेरे मे। उन्होने पहले जान, फिर

जहाँ तक मुमकिन हो, नकदी माल लेकर भागने का तय किया।

मगर भागने से पहले पाकिस्तानी बलवाइयों के सरदार ने कहा —"मैं यह चाहता हूँ कि इन औरतों में जो सबसे ज्यादा खूबसूरत हो उसकी निकाह् करायी जाय हमारे दल के उस शख्स से जो सबसे ज्यादा बदशक्ल हो।"

यह बात सबने पसन्द की और खूबसूरत औरत और बदसूरत मर्द,की तलाश ताबड़तोड़ शुरू हुई। कुछ ही देर बाद दो शख्स पेश किये गये—एक औरत निहायत हसीन और दूसरा मर्द—लम्बी नाक, बड़ी खोपड़ी, चमगीदड़ी चौमड़काया, नाँद-सा पेट, छोटी कौड़िया आँखें।

"क्यों," सालार ने पूछा—"वह तो दरगाह वाला फ़कीर है,क्या अपने गिरोह मे इससे ज्यादा बदशक्ल कोई नहीं?"

"गिरोह तो दूर, सारे पंजाब में इस मलंग से ज्यादा बदसूरत ढूँढने से भी न दिखाई पडेगा।"

उधर गोलियाँ चलती रही, इधर ऊधमी पाकिस्तानी चाचाजी को नौशा बनाते रहे। किसी ने पाजामा दिया, किसी ने अचकन, किसी ने पगड़ी, किसी ने जूते। मुल्ला आया—दुल्हन आयी। मगर इसी वक्त सिखो का दल भी मैदान मे पिल पड़ा। पाकिस्तानी भाग खड़े हुए शादी की आखिरी रस्म पूरी किये बिना ही दूल्हा-दुल्हन को अपने भाग्य के भरोसे छोड़। चारो ओर मार-धाड, भाग-दौड, चिल्ल-पुकार। घबराकर दुल्हन ने दूल्हे की तरफ देखा और मानो देखे पर एतबार न कर आँखें मल कर पुन: पहचानने लगी। मगर बदशक्त पति ने सौंदर्यमयी पत्नी को तुरन्त ही पहचान लिया। महान आश्चर्य से चमककर चाचाजी ने कहा—

"अरे—देवीजी, तुम !!"

राष्ट्रीय पोशाक

लखनऊ का कास्मोपालिटन क्लब सच पूछिए तो कुमारी मंजुला माथुर के कारण स्थापित हुआ और चलता भी है। वही क्लब की सेक्रेटरी भी है, सभापति है कुमार देवपाल सिंह। क्लब में ज्यादातर युनिवर्सिटी के ऊँचे क्लासों के तरुण है। बाहरी उद्देश्य है देश को सास्कृतिक दृष्टि से चैतन्य करना पर अन्दर-ही-अन्दर हरेक मेम्बर कुमारी माथुर के रूप-यौवन या चुलबुलेपन का आशिक। प्रत्येक की इच्छा एक यही कि किसी तरह मंजुला उसकी हो जाय। कुमार देवपाल तो विवाहित पर मिस माथुर के लिए वह पहली औरत भी छोड़ने को तैयार, गद्दी पर बैठते ही मजुला को रानी बनाने को राजी।

मगर मंजुला ऐसी उडती चिडिया कि कुछ पूछिए मत। आँखें मिलाती सबसे, रुख देती एक को भी नही। नतीजा यह कि कालेज के दर्जनो नौजवान बन्दर की तरह नाचते उसकी आँखो की डोरी में बँधे। तरुणो को बाँधकर नचाने में आनन्द आता मंजुला को। कालेज के दर्जनो युवक और क्लब का हरेक सदस्य इसी भ्रम में मगन रहता कि मजुलाजी सबसे ज्यादा प्रसन्न उसी पर है, पर मिस माथुर निर्मोहिनी, संगमर्मर की ठण्डी मूर्ति, हृदयहीन हरारत-रहित। आपको नापसंद आता केवल वह मद्रासी रिसर्चस्कालर रामन्नता, एम० ए० फाइनल वाला। क्योंकि रामन्ना बदशक्ली का नमूना, काला रंग, नाटा और गठीला, घुंटा सर, छोटी आँखें और जरा चिपट मुख। क्लब कास्मोपालिटन, सदस्य कोई भी बन सकता था, इसलिए रामन्ना का प्रकट विरोध मिस माथुर कर नही सकती थी, पर उसके सभा मे आते ही मंजुला के मुँह पर घृणा-भाव आ जाते।

उस दिन रामन्ना नही था संयोग से, कास्मोपालिटन क्लब मे चिड़िया-खाना चहक रहा था। परसों प्रान्त के शिक्षा मन्त्री क्लब में पधारने वाले थे। कैसे उनका स्वागत किया जाय—यही विषय सबके सामने उपस्थित था।

"इस मौके पर माननीय मन्त्री महोदय को," कुमार देवपाल ने कहा —"पंचवाण-नृत्य दिखलाया जाय जिसमे केवल गर्ल्स काम करें।"

"एक कवि सम्मेलन किया जाय," दूसरे ने राय दी।

"उससे ज्यादा मजा मुशायरे मे आवेगा।" तीसरे ने सलाह दी।

"मेरी राय से," चौथे ने कहा—"ये सभी प्रस्ताव छिछले, शिक्षा मंत्री के सामने कोई बौद्धिक-चर्चा होनी चाहिए। मेरा प्रस्ताव है कि हम लोग 'राष्ट्रीय पोशाक' विषय पर छोटे-छोटे पेपर पढ़ें और इसी बहाने माननीय मंत्री के सामने चन्द सुझाव रखें।"

इसी समय आता दिखायी पड़ा रामन्ना जो शायद दूर ही से चर्चा सुन रहा था और मण्डली मे दाखिल होने के लिए मौके की तलाश मे था— "राष्ट्रीय पोशाक की चर्चा ही शिक्षा मन्त्री के आगे ठीक होगी।" मजुला के ठीक बगल में एक खाली ताड कर रामन्ना जा डटा। सूट-बूट-धारी काकुलवाज यारों को रामन्ना की हरकत बहुत बुरी लगी।

"ब्यूटी एण्ड बीस्ट—अंगूर का गुच्छा और कौआ।" एक ने स्वगत कहा।

प्रकट कहा दूसरे ने—"आप वहीं क्यो बैठ गये? यहाँ हमारी बगल मे आइये। मिस माथुर को एक खास रंग से चिढ है—जानते नही।"

रामन्ना इस अपमान से तिलमिला उठा—"अगर किसी मिस को काला रंग नापसन्द है तो वह अपनी जुल्फों, भवो, आँख की बड़ी-बड़ी पुतलियो पर चूना पोत लें। कास्मोपालिटन क्लब में सबरंगी लोग आते है यह जो न जानती हो वह मिस यहाँ आती ही क्यो है? मैं कहता हूँ वह आदमी मूर्ख है, ईडियट जो समझता है कि नारी केवल सुन्दर लोगों को पसन्द करती है। मनु ने लिखा है—

नैता रूप परीक्षन्ते नासा वयसि संस्थितिः
सुरूपं वा विरूपवा पुमानित्येव भुञ्जते।

"नारी देखती है केवल पुरुष, रूप नहीं, कुरूप भी नहीं।"

"मनु जंगली युग के व्यवस्थादाता," बोली मिस माथुर मगर रामन्ना की ओर देखे बगैर—"आज की मजलिस में मनु का नाम लेना बिजली घर में चकमक की चिनगारी झाड़ना है। नारी शक्ति देखती है। आप लोगों में से कोई अगर पार्लमेंटरी सेक्रेटरी भी होता तो मेरे दिल में उसके लिए अधिक जगह होती।"

"अधिक जगह को डिफाइन कीजिए।" एक सुन्दर तरुण ने तीव्र आग्रह किया।

"आपसे बात करना भी मुझे नहीं सुहाता। यह है आपकी जगह, मेरी तंगदिली। पार्लमेंटरी सेक्रेटरी को मैं अपनी बगल में बैठाती—यह है उसकी जगह, मेरी प्रसन्नता।" मिस माथुर ने कहा।

"बस?" कुमार देवपाल ने मार्मिक प्रश्न किया जिससे छनक कर मंजुला ने उत्तर दिया—

"बस नहीं, पार्लमेंटरी सेक्रेटरी को मैं अपना हाथ भी आफर कर सकती हूँ—क्योंकि यह भविष्यवान हो सकता है, मंत्री से प्रधान हो सकता है।"

"और अगर रामन्ना कल पार्लमेंटरी सेक्रेटरी बन जाय तो?" एक ने पूछा।

"डोन्ट बी पर्सनल!" मंजुला बोली—"मैं जनरल बात कहती हूँ, व्यक्ति विशेष की चर्चा फिजूल।"

"यही तो मनु ने भी कहा था," रामन्ना अपनी बात पर आया—"स्त्री रूप नहीं देखती, कुरूप भी नहीं, वह देखती है पुरुष—जिसे मिस माथुर पौरुष-प्रभाव—पार्लमेंटरी पद पुकारती है। मनु और मंजुला दोनों की बातें जनरल और दोनों के ही जनरल गंज में रामन्ना भी है।"

इस वक्त शिक्षा मन्त्री का लाल वर्दीधारी अर्दली आया, क्लब के सभापति के नाम एक पत्र लेकर। पत्र में लिखा था—

"कल मैं आप लोगों में से एक पार्लमेंटरी सेक्रेटरी चुनूँगा इसलिए बेहतर हो अगर कल आप लोग किसी सार्वजनिक विषय पर छोटे-छोटे निबन्ध मुझे सुनावें जिससे योग्य व्यक्ति को परखने में सुविधा हो।"

अर्दली पत्र देकर चला गया। क्लब में पुनः कोलाहल।

"राष्ट्रीय पोशाक वाला सब्जेक्ट काफी अच्छा है ।"

"है तो अच्छा," होमी पारसी बोला—"और मैं जीत भी जाऊँगा, शिक्षा मत्री मुझे ही पार्लमेंटरी सेक्रेटरी चुनेंगे—पर मिस मायुर के आफर का लाभ मैं न उठा सकूँगा—मेरी शादी हो चुकी है ।"

"तू क्या जीतेगा," देवपालसिंह ने कहा—"जीतूँगा मैं । तुम सबमे पर्सनेलिटी है तो मेरी सेक्रेटरी बनने काविल—प्रतिभा भी पर क्या मिस मायुर पार्लमेंटरी सेक्रेटरी बनने वाले के साथ अपना वादा पूरा करेंगी ?"

"करूँगी पूरा वादा !" मंजुला ने आजादी से झूमकर जवाब दिया—"कल आप तो जीत नही सकते लेकिन जो भी विजयी होगा उसे मैं अपना हाथ एक बार जरूर आफर करूँगी !"

रामन्ना ने चमक कर मंजुला की ओर अपना दाहिना हाथ बढ़ाया—"पक्का वादा ? हाथ मिलाइये !"

"वादा पक्का," नाक सिकोडकर मंजुला ने जवाब दे दिया—"पर तुमसे वास्ता नही, पार्लमेंटरी सेक्रेटरी से हाथ मिलाऊँगी ।"

निश्चित दिन शिक्षा मत्री आये तो पर उतावली से भरे । बतलाया उन्होंने कि एक ही घटा बाद उन्हे कानपुर जाना है, फिर बनारस, सो अधिक समय उनके पास नही । निबन्ध पढ़ने की जरूरत नही, केवल मुझे दे दिये जायें । पढ कर मैं तुरन्त सर्वश्रेष्ठ लेखक को पार्लमेंटरी पद के लिए पसन्द कर लेता हूँ ।

फौरन ग्यारह लेख माननीय मन्त्री के सामने पेश किये गये जिन्हें उन्होंने तेजी से जाँचना शुरू कर दिया । इसमे उन्हे डेढ घण्टा लग गया । परिणाम जानने को उत्सुक—परीक्षार्थी डेढ घण्टे तक मत्री का मुँह ताकते रहे । अन्त मे कुछ निश्चित कर वह उठे—

"मित्रो !" शिक्षा मंत्री ने शुरू किया—"आज की प्रतियोगिता बडी मनोरजक रही । राष्ट्रीय भूषा क्या होगी इस पर आप ग्यारह मित्रों ने जो अमूल्य राय दी उससे मेरा ज्ञानवर्धन हुआ । हरेक लेख को उचित ध्यान से मैंने पढा । कुमार देवपाल सिह की राइटिंग अच्छी, श्री होमी रस्तम की भाषा बहुत अच्छी, विषय का प्रतिपादन गोविन्द शर्मा ने खूब

किया है। पर आप लोगों में एक भाग्यवान है जिसकी रायटिंग अच्छी, भाषा और प्रतिपादन अच्छा, साथ ही बहुत अच्छे सुझाव हैं। नाम बतलाने के पहले मैं उनका लेख पढकर सुनाता हूँ। फिर उस तरुण को मेरे निकट लाकर मिस मंजुला मायुर परिचय करायेंगी।"

"राष्ट्रीय पोशाक का चुनाव," शिक्षा मंत्री पढ़ चले—"बहुत जरूरी। मेरी राय मे पं० नेहरू जो पोशाक पहनते हैं, किंचित परिवर्तन के बाद वही राष्ट्रीय ड्रेस होने काबिल है। चूड़ीदार पाजामा, कुरता, शेरवानी, कोट, पर पाँव में अफगान सेन्डल की जगह नुकीले पंजाबी जोड़े और सर पर गांधी टोपी की जगह नवाखाली हैट मुझे अधिक पसन्द। पश्चिम का हैट ही लेने काबिल है। मगर प्रधान मंत्री के लिए यह पोशाक प्रापर नहीं। मेरी राय में सारे मन्त्रिमण्डल के लोग उसी वेश मे रहा करें जिसमे शंकराचार्य रहा करते है। बेशक प्रभाव देश और समाज पर काफी पड़ता है। मन्त्रियों का संन्यासी वेश अनायास ही जनता के मन में श्रद्धा-विश्वास बढ़ायेगा। हरेक मन्त्री का वस्त्र कापाय रंग हो, पाँव में खड़ाऊँ हो, हाथ मे पलाश दण्ड। कपड़ो में कोपीन, लुंगी और दुपट्टा हो, पर प्रधान मन्त्री और शिक्षा मंत्री केवल कौपीनधारी हों। यही लोग शंकराचार्य के शब्दो में कौपीन वन्तः खलु भाग्यवन्तः माने जायं। कुछ लोग कहेंगे कि ऐसी पोशाक भड़ैती या नकली मालूम पड़ेगी। मैं कहता हूँ विलायती बातें नकली नहीं मालूम पडती? यह हैट, यह ब्यूक, यह कोट और बूट? देशी आर्य रंग ही भड़ैती है? आर्य पोशाक को जो हीन माने मैं उसे नीच मनोवृत्ति का मानता हूँ। सर्दी के दिनों मे मन्त्री लोग गेरुआ रंग के ऊनी चादर या अलफी पहनें, जहाँ पैदल चलने से काम चले, बैलगाडी से परहेज करें, जहाँ बैलगाड़ी से काम हो वहाँ घोड़ागाड़ी पर न चढ़ें—सिवा लम्बे दौरों के मोटर पर घूमना पाप मानें। मंत्री बनने वाला व्यक्तिगत सम्पत्ति कुल या देश को दान देकर पदासीन हो और फिर आजन्म राष्ट्रीय कोश से उसका प्रबन्ध किया जाय। विदेशों में जो राजदूत रहें वह वही पोशाक पहनें जो उस देश के लोग पहनते हों। तुर्की मे तुर्की, रूस मे रूसी, चीन में चीनी और अमेरिका मे अमरीकी लिबास। खास अवसरों पर विदेशी मंत्री भी शंकराचार्य के ही वेश मे सजे। गवर्नर साधारण भूपा याने पंजाबी जूते, चूड़ीदार पाजामा,

कुरता, शेरवानी और नवाखाली हैट पहने, हाँ स्त्री मन्त्रिणियाँ जैसे चाहें वैसे वस्त्र धारण कर सकती हैं,—पर स्वदेशी।"

"ये सुझाव सम्पूर्ण नहीं," लेख को मेज पर रखते हुए शिक्षा मंत्री ने कहा —"पर सर्वोत्तम हैं। इनके लेखक श्री रामन्ना को मैं बधाई देता हूँ और मनोनीत करता हूँ अपना पार्लमेंटरी सेक्रेटरी। प्रार्थना करता हूँ कि मिस माथुर रामन्ना जी का कुछ परिचय मुझे दें।"

मिस माथुर पर जैसे पहाड़ गिर पड़ा हो। वह काला मद्रासी जीतेगा, उन्हें सपने में भी आशा न थी। वही जीता ही नहीं पार्लमेंटरी सेक्रेटरी भी मनोनीत कर लिया गया! चकरा कर मंजुला कुरसी पर गिर-सी पड़ी। तब तक लपक कर रामन्ना स्वयं मंत्रि के निकट आ रहा—त्रिपटी मुँह, काला भुजंग, नाटा गुट्ठल, घुटा सर—

"मेरा ही नाम रामन्ना है। पार्लमेंटरी सेक्रेटरी की हैसियत से प्रांत की सेवा करने का अवसर लाभ होने की मुझे खुशी है पर ज्यादा खुशी है इस बात की मिस माथुर मुझे अपना हाथ आफर करेंगी।"

रामन्ना ने मंजुला की तरफ दाहिना हाथ बढा दिया और अचरज! मिस माथुर ने भी अपना हाथ बढाया यह कहकर कि—

"पार्लमेंटरी सेक्रेटरी मिस्टर रामन्ना—कांग्रेचुलेशन्स!"

चित्र-विचित्र

यह कहानी एक नेता की है, पर कोई दोस्त नेता बुरा मानकर अपने चित चोर की दाढ़ी मे तिनका न ढूंढे। सभी नेता बुरे नहीं लेकिन यह कहानी वैसे बुरे जननायकों में से एक की है जिनकी चर्चा दिवंगत महात्मा गाधी को एक तीव्र पत्र लिखकर दक्षिण भारत के विख्यात देशभक्त श्री कोण्डावेंट पैया गारू ने की थी।

यह कहानी चन्द देशद्रोही चंट व्यापारियों की है जिनमे कपड़े का व्यापारी, गल्ले का रोजगार, भवन निर्माण का ठेकेदार और अखबार का प्रकाशक—स्वामी शामिल हैं। पर उक्त धन्धे के हरेक पेशेवर को कमीना कहना उद्देश्य नहीं, मकसद है उन दुष्टों का नग्न रूप अवाम को दिखा देना जिन्हे एक दिन जवाहरलाल नेहरू ने चौमुहानीभर फासी दे देने की सलाह दी थी लेकिन—अरसा, बरसो गुजरने और गुनाहो के बराबर बढ़ने पर भी—लटकाया एक भी न गया।

यह कहानी महात्मा गांधी के उन छिपे हत्यारों की है जिनका अपराध चाण्डाल नाथूराम विनायक गोड़से से बाल बराबर भी कम नही, पर जिनके हाथो में न तो धडधड़ाती पिस्तौल है और न आस्तीनों पर चिल्लाता-पुकारता लहू।

यह कहानी सारा भारत जानता है कानोकान फुसफुसाता छिपाता हुआ, पर चौडे मे छपाता हूँ एक मैं—बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।

यह कहानी यों है : (मैं जल्दी करता हूँ यों कि हैरत से रुका किसी पाठक का दम कही घुट न जाय !)

नाकपुर—आप जानते है ? कानपुर नही, नागपुर भी नही, नाक-

नागपुर। वह कानपुर के सौ मील उत्तर और नागपुर के पचास मील दक्षिण मे फैला हुआ है। वहीं के नामी नेता श्री कचनराम के यहाँ उस दिन खासा महाभोज था पर नाम था चायपार्टी उसका। शहर के एक हज़ार छोटे, मझोले, बड़े आदमी कंचनराम के दरवाजे के सामने वाले विस्तृत बाग मे जुटे हुए थे।

"ऐसी दावत अंग्रेजी राज मे राजा-रईस ही दे सकते थे।" एक ओर दो-तीन आदमी ताज्जुब से बातें कर रहे थे।

"आज कांग्रेसी राज होने से राजा वही जो मन्त्री हो, रईस वही जो हो एम० एल० ए०।"

"*चर्व-चोष्य-लेह्य पेय सबका इन्तेजाम कचनरामजी ने किया है।* दुनियाँ कन्ट्रोलो से जकड़ी हो, पर मोटे नेताओं पर कोई कंट्रोल नही।"

"अगले जमाने मे विधान गढ़ने वाला राजा होता था। कानूनो के ऊपर, जो गलती कर ही नही सकता था। अब कांग्रेसी राज मे वही महान पद बड़े पुराने नेताओं का है। देखो न कचनराम को शहर के चारो मोटे असामियो ने घेर रखा है।"

"अजी पाँचों घी में हैं—पाँचो! चारों को तो ठेके, परमिट पेपर *दिला-दिलाकर एम० एल० ए० जी ने मदमस्त हाथी बना दिया और* देश-भक्त जी को रुपये की झड़ी लगा बरसाती गोबर बना दिया चारो ने!"

"क्या कहने! परस्पर सहयोगवाली कम्यूनिस्ट कला का भारतीय-सस्ता-सस्करण।"

"आखिर इस दावत का मकसद-उद्देश्य क्या है?"

"ऊपरी उद्देश्य तो शहर मे दंगा शान्त होने, अमनोअमान कायम हो जाने की खुशी में प्रीति-सम्मेलन है, अन्दरूनी बातें क्या हैं—अन्तर्यामी ही जानते होंगे।"

उक्त बातें करने वालों से काफी दूर पर नेता कंचनराम जी अपने चतुरंगी-संगियों में चहक रहे थे—

कचनराम—कितना भयानक था इस बार का दंगा जिसे भगवान के बाद एक मैं ही शान्त करने में समर्थ हुआ।

कपड़ा गल्ला सौदागर ने खुशामद के स्वर मे दात निकालते हुए कहा,

"भगवान के बाद नही, पहले श्रीमान का नम्बर है। भगवान ने प्रकट फल किसे दिया—? किसी भकुवे ने देखा ? और आपके फल चखने वालों की चतुरंगी सेना है। मैं तो सच कहता हूँ—आपके दर्शनों के बाद मेरी निगाहों के नीचे कोई दूसरा भगवान् नही आता।"

"चापलूसी बहुत न कर।" मकानों का कान्ट्रेक्टर कड़कड़ाया बनिये की तरफ—"दंगा शुरू किया मैंने, रोका भी बन्दे ने ही—और फायदा उठाया चौचक एम० एल० बी० जी ने। राह का काँटा सीने का शूल समूल समाप्त हो गया बलवे में, लीडरी के आसमानी चँदोवे मे चार चाँद लगे—मुनाफे में!"

"अरे धीरे बोल यार!" कंचनराम ने मकान कान्ट्रेक्टर दोस्त को होशियार किया। "शुक्रगुजार हूँ तेरा भाई, एहसानमन्द हूँ।"

"एहसानमन्द नही," कान्ट्रेक्टर बोला—"मेरा कलेजा कभी नुकीली आरियों से रिदता है—कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह सत्य नही, असत्य है, प्रकाश नही, मोहान्धकार है। हम किसी को धोका दे रहे हैं, हम अपने को धोका दे रहे हैं, हम सभी को धोका दे रहे हैं। हम किसी धोके मे है! जब वह बुड्ढा महात्मा दिल्ली की प्रार्थनाओं में ईश्वर-स्वरूप जनता जनार्दन के सामने जन और नायकों की कमजोरियो पर रोता है, मुझ दुर्जन-खल नायक का कलेजा फटने लगता है। रामभक्त साधु को कुन्द छुरी से हलाल करने का-सा पाप मैंने किया, कि आप जैसो की मदद से पिछले आठ महीनों मे आठ लाख रुपये बनाये। आपको नजराना क्या देना पड़ा दिल ही जानता है मेरा या आपके पुण्य पाप का बैंक एकाउन्ट रखने वाला अन्तर्यामी। लेकिन मेरे आठ लाख बड़े महगे पड़े। हैजा में बेटे मरे तीन, लाहौर मे दूकानें जलाई गयीं तेरह—मेरे आठ लाख भारी महंगे! बहू छत से गिर कर मर गयी। दो बेटियाँ लाहौरी लुटेरों ने लूट लीं और मेरे दिल पर सुनो तो हन्टरों की सनकार!"

पजाबी को सनकते देख राजनीतिक चालबाज नेता का माथा ठनका। वह चमककर उनके पास आ गया—मन्द मुस्कराता। आवेशित-अन्तरंगी का हाथ मजबूती से पकड़कर बगीचे से सटे बगले के ड्राइग रूम की तरफ खींच ले चला कंचनराम। बन्दर के पीछे दुम की तरह नेता के दूसरे चुने

मित्र भी पछियाते गये।

ड्राइंगरूम ही शब्द 'फिट' हो सकता है नाकपुर के नेताराज कंचनराम के उस पचीस फुट चौड़े, पैंसठ फुट लम्बे, पचहत्तर फुट ऊँचे महाप्रकोष्ठ के लिए। और कैसा 'डेकोरेशन' बिलकुल ब्यूटीफुल बंबैया वैभव विस्तार! नये ढग के फर्निचर जिन्हे दूर से देखिए तो तराजू और नजदीक से आजमाइये तो टेबुल, कुर्सियाँ और क्या गिनाऊ मैं—('माडर्न' नज़र से कम कल्चर्ड मैन)।

कमरे में आते ही जरा बरसते से कंचनराम पजाबी दोस्त पर उखड़े—

"निहायत अजीब आदमी! सरदारजी, आपको आज हो क्या गया है!"

"मैने एक बोतल बराण्डी चढ़ा ली है। तेरे आगे बिना पीये मुँह खोलना मेरे कमान के बाहर की बात। पर कई दिनो से मैं बड़ा बेजार हो रहा हूँ जिन्दगी से। खासकर जब से लडकियाँ मेरी लूट ली गयी—आह!"

"तो अब आपका मकसद क्या है? इस शोरशराबा से फायदा?"

"फायदा यही कि हमे पश्चात्ताप करना चाहिए, तौबा करना चाहिए, फ्यूचर मे पाप नही इसके लिए प्रार्थना-प्रयत्न करना चाहिए। आज सवेरे मेरे मन मे एक बात आयी।"

"कौन-सी बात!" सभी दोस्तो ने सुनने की उत्सुकता दिखायी।

"बात यह कि आज श्री कचनराम जी उस चित्र के ऊपर से परदा हटाकर देखे जिसके कमाल कलाकार पर इनका विश्वास नही। मैं कहता हूँ जो बात चित्र मे कचनरामजी बरसों से ढूंढ रहे थे वह आज नुमाया हो गयी हो तो ताज्जुब नही।'

"क्या बात? कैसी तस्वीर?? अजी वाह! कचनराम जी हमें नही बतलाया यह भेद—यह भी कोई दोस्ती रही। हमसे ज्यादा यह जट्ट जाने! अभी दिखलाइये वह तस्वीर, फौरन सुनाइए उसकी हिस्ट्री-मिस्ट्री।"

सारे के सारे दोस्तो ने एक स्वर मे आग्रह किया।

"इसकी कहानी मैं सुनाऊँ?" पंजाबी ने कंचनराम की आज्ञा चाही। कुछ गुबार निकल जाने से अब उसका आवेश हलका हो गया था। वह अब कटु नही, 'फ्रेन्डली मूड' में था।

नेता ने अनिच्छा में स्वीकृति दी—"सुना—भाई सुना दे। तब तक मैं जा बाहर का प्रबन्ध देखता आऊँ। पाँच मिनट का वक्त देता हूँ। इसी में सारा किस्सा मुख्तसिर कह डालिए। इन मित्रों से क्या छिपा, क्या छिपाना! पर विस्तार करिएगा तो कान पकड़कर 'गो आन' सुनाया जायेगा।"

कंचनराम एक अनोखी अदा से अकड़ता बाहर चला गया।

"कंचनराम के बाप नाकपुर के नामी जौहरियों में।" सरदार कान्ट्रेक्टर ने शुरू किया—"हिन्दुस्तान की सारी छोटी रियासतों से उनका सम्बन्ध। रोजगार उनका राजाओं को जवाहरात, गहने, इत्र—एक की जगह दस दामों पर—उधार देना और फिर सारे साल रुपयों की तहसील में चक्कर काटना। कभी पूरबी रजवाड़ों में, कभी पश्चिमी। नाकपुर की कोठी में याने इसी बंगले में, उन्होंने सोना-चाँदी की झड़ी लगा दी। रतनों की फुलझड़ी। कंचनराम के पिता लक्ष्मी के वरद पुत्रों में थे। उनमें बुद्धि की, सुकुमारता नहीं थी। कमाते थे समुद्र की तरह, प्रदेश की मीठी मुनाफेदार नदियों के घाटों का पानी पचाने में समर्थ। पर, प्यासे की पुकार में उदार वह कभी न बन सके। खारे स्वार्थी, ठण्डे जौहरी, ज्योतिर्मय सूर, वज्र-कठोर!

"कंचनराम के बाप पिघले कभी तो केवल एक आदमी से, उनका पवित्र नाम हम अच्छी तरह जानते हैं—महात्मा गांधी। महात्मा जी को एक बार अपनी कोठी पर बुलाकर कंचनराम के पिता ने सवा लाख रुपया दिया था। वह बहुत बीमार थे। महात्मा जी नाकपुर पधारे थे। कंचन के पिता के मन में आया कि अगर किसी कदर महात्मा के चरण उनके बंगले तक आ जायें तो वह बच जायेंगे। महात्माजी ने भी आना मंजूर कर लिया, रुपयों के लिहाज में कम, बीमार को ढाढस बँधाने के उदार विचार से ज्यादा। महात्मा की स्वीकृति सूचना पाते ही मेरी आँखों देखी बात है कंचनराम के पिता आधे चंगे हो गये। स्वयं बिस्तर से उठकर खद्दर से सारा घर सजाने लगे। फौरन से पेश्तर अपने खास आर्टिस्ट या चित्रकार खुर्शेद ईरानी को बुलाया। बोले, दो चित्र बनाने हैं। एक महात्मा गांधी का और दूसरा एकलौते पुत्र कंचन का। ईरानी ने दिक्कत सुनायी, उसके

पास कागज, केनवास, कूँच, रंग कुछ भी नही, क्योंकि उसकी माडल छोकरी शर्मा ने पिछली रात चित्रकारी का सारा सामान इस शान से जला दिया कि—'शैतान की मार ! दिन-रात की तस्वीर पिताजी तुमको वेदीद कर दे तो ?' इस पर बूढ़े जौहरी ने कनवास और कलर के लिए सारा शहर छनवा डाला पर ईरानी कलाकार के काम काबिल चीजें न मिल सकी। मिला भी तो इतना थोड़ा सामान जिससे चित्रकार के कथनानुसार एक ही चित्र तैयार करना मुमकिन था। कंचनराम के पिता ने आज्ञा दी कि—महात्मा का ही कोई अद्भुत पोज तैयार किया जाय। दस मिनट ही वह ठहरेंगे। इतने में ही स्केच तैयार हो मगर हमारे नेता साहब बचपन से हठीले। अड़ गये बाप से कि—महात्मा की नही मेरी तस्वीर तैयार की जाय। जनाब सर पटकने लगे, जान देने-लेने पर उतर आये। लाचार कलाकार ने कनवास के दोनों ओर चित्र उरेहने का निश्चय सुनाया। एक तरफ हठीले कंचनराम का, दूसरी तरफ दृढ़व्रत महात्मा जी का। कचनराम नौशे की तरह बनठन कर आये, आँखो में सुरमा, जुल्फों मे भँवरें, सर पर रतन बहार ताज—कश्तीनुमा, कमर मे कटार धारदार। कमसिन कंचनराय आते ही कलाकार से मचल पड़े—पहले मेरी तस्वीर बना लो, फिर किसी और की। नहीं तो—नगी कटार दाहिने हाथ मे शोखी से सुधार कर, कंचनराम ने कलाकार का खून करने का भाव दर्साया और बूढे ईरानी खुर्शेद की आँखो में बेवकूफ की माशूकाना अदा खिच गयी। कनवास पर कोयले की करामात आँखें खोलकर कुछ बोलने का रंग बाँधने लगी। इसी वक्त बगीचे से ठण्डी हवा की तरह सनसनाती हुई खबर आयी—'महात्माजी आ गये।'

"पर खुर्शेद कचनराम की बाँकी अदा के चित्रण मे ऐसा व्यस्त था कि जिस 'गालिब' के लफ्जो मे 'खीचता था जिस कदर उतना ही खिचता जाय था।' और कचनराम के कानों मे भी युगावतार के आगमन की भनक न पड़ी। चित्रकार खीचने मे मस्त, कंचन खिचवाने में 'माशूक शेख अशि के दीवाना' वाला मामला निर्विकृत भाव से सामने था। महात्मा जी की नजर भी आते कचनराम पर पड़ी, पर खुर्शेद और गाँधी के नुक्ते नजर मे दुनियावी गुबार और जन्नती हवा का अन्तर कलाकार मस्त हुआ था

कचनराम कममिन की बाँकी अदा पर महात्मा खिचे कटार की धार से!
शायद दोनों की हठयोग भरी मुद्रा भी कर्मयोगी को कौतूहलकारी मालूम
पड़ी। वह कलाकार के पहले निकट आये, कंचनराम के—जिसके हाथ
में घातक शस्त्र था।

"यह क्या! प्रश्न करते-करते महात्मा जी समक्ष से सँभले—अपना
चित्र सजवाने में तुम इतने मसगूल हो कि आवागमन का ज्ञान नहीं। अज्ञान
तो बहुत देखे पर ध्यानावस्थित होने की ताकत काफी है तुम में। दरिद्र
नारायण पर ध्यान दो। देश का ख्याल साधो। खुदसाजी और खुद बीनी
में कोई सत नहीं, कल्याण नहीं, जस नहीं। यह कटार किसी गरीब घसियारे
को दे दो। वह इससे गला काटने की जगह पेट भरने का काम लेगा। पहनो
सादे कपड़े, नौरतन टोपी हमारे चतुर्दिग की गरीबी में गुलामी की वर्दी है।
उतारो इसे, उतारो उसे, खद्दर का नया चोला चैतन्य चढ़ाओ! और आप
न मानें पर मैंने जो बात आँखों देखी कैसे एतबार करूँ। खुर्शेद अभी तक
कनवास और कोयले के चक्कर में था। उसका ध्यान गांधी जी की तरफ
तब गया जब माडल देखने के विचार से कनवास से कंचनराम की तरफ
गरदन उसने मोड़ी। यह क्या। पहली सूरत ही गायब। वह नक्शा ही न
रहा। उस वक्त गांधी जी से प्रभावित हो कचनराम अपने तन के रेशमी
कपड़े उतार रहे थे। किमख्वाब की अचकन, रेशमी क्रेप की कमीज।
कटार और कलंगीदार कश्तीनुमा टोपी पहले से ही जमीन सूंघ रही थी।
अब उसकी नजर महात्मा जी पर पड़ी और उनके विचित्र दर्शन चेहरे पर
गडी की गडी रह गयी। उसे वह चेहरा शाही मालूम पड़ा, बादशाही नहीं।
खूबसूरत न होते हुए भी गांधी जी का नक्श कलाकार खुर्शेद के एक ही
लफ्ज में 'दिल-फरेब' था। कंचनराम की शक्ल जितनी ही कारीगरी से
बनायी हुई थी, महात्मा जी की उतनी ही लापरवाही में, पर उस लापर-
वाही में क्या कारीगरी खुर्शेद ने देखी—कैसा कमाल पाया! लेकिन
गांधी जी टाइम के पाबन्द। दस मिनट पूरे हो गये। वह चल दिये, माशूक
का पोज और आशिक का कम्पोज···चुपचाप बिगाड़कर। बिना कुछ कहे
मौलिक भावुक कला के प्रति अपनी राय कह दी मानो महात्मा ने। खुर्शेद
खम खाकर रह गया—गम खाकर इतने बड़े करेक्टर आर्टिस्ट ने खुर्शेद के

चारकोल स्केच की तरफ उपेक्षा से भी नही देखा। उसने कचनराम का चित्र जिसकी अभी सुकुमार रेखाएँ मात्र उभरी थी, ऐसा तैयार किया था जिसके आगे विलायती 'ब्लू बॉय' का आर्टिस्ट भी फीका दिखे—सोचा उसने—बाजार में आने तो दो कभी। जरा तस्वीर मे रंग भरने तो दो—जान जागने तो दो।

"यह सब खुर्शेद ने दूसरे दिन मुझे बतलाया, वह मेरा दोस्त है, अक्सर मै अपने नक्शे सुधरवाता हूँ। खुर्शेद का दिल जैसे दरपन। पर दरपन तो अपारदर्शी, कलाकार का दिल पारदर्शी। दूसरे दिन उसने बतलाया कि गांधी के अन्दाज खास से चले जाने के बाद पहले तो उसकी आँखों के आगे विचित्र बिजली चमक गयी। फिर वह सोचने लगा—महात्मा की अदाएँ भी माशुकाना। तप के कैसे तेवर-कमनीय 'रूप'। अमेली शाह के कैसे जल्वे। बाहरी रूप पर आन्तरिक अनुराग कैसे खुशरग। महात्मा बदशक्ल नही, खूबसूरत प्रेत नही, प्रेमी, मामूली आदमी नही फरिश्ता—आह! चटकना लगा खुर्शेद के गाल पर—फरिश्ता खसलत उसके सामने आकर चला गया और उसने पहचानने मे देर लगायी। न खिच सका, न खींच ही। अपनी बेवकूफी पर पानी-पानी हो रहा—सजल। उसी अवस्था मे तुलसीदास ने गाया था 'सजल नैन गद्गद गिरा, गहबर मन पुलक शरीर।' और कलाकार ने-कनवास का दूसरा रुख पलटा। कला की स्वच्छ भूमिका उसकी आँखों के आगे खिल गयी, हृदय उमडा, समुद्र लहराया, अंगुलियाँ हिली, चारकोल बह चला, लकीरें तरंगों मे तैरने लगी। खुर्शेद तन्मय होकर कला कर्मरत हुआ तो रग आ गया बतलाया उसने—छत्तीस घण्टे वहाँ से उठा नही, कोई हाजत ही दरपेश न आयी। कचनराम के बाप ने कहा—मरेगा बुड्ढा क्या? पर बुड्ढा खुर्शेद उठा तो अमर होकर उठा। क्या तस्वीर बनायी जानदार मुसब्विर ने कि जिसने देखा वही दग—रग रंग रह गया। वह तस्वीर उस कमरे में है—कचनराम जी भी आ रहे है। चलकर वह तस्वीर आप आपनी आँखों देखें तो आँखें खुल जायेंगी।"

नेता जी के आते ही पहला आग्रह मित्रों ने यह किया कि खुर्शेद की वह दोरुखी तस्वीर उन्हे दिखायी जाय। पंजाबी इंजीनियर कान्ट्रेक्टर के बतलाये कमरे मे मित्र-मण्डली कंचनराम की इच्छा को ठेंगे पर मार उस

तरह पिल पड़ी जैसे काश्मीर की सीमा में लुटेरे।

पहले तसवीर का जो रुख मित्रों के सामने आया उसमें कंचनराम की कमसिनी कमनीय थी कुछ ऐसी कि नेताराज स्वयं कह उठे—'पहले मैं कैसा था।' इस पर पंजाबी पट्ठे ने ताना दिया 'पर आज जरा दरपन में मुखड़ा देख, हुंम और चंडूल चेहरा, गुलाब और भटकटैया का फर्क। पर जरा इसके पीछे वाली तस्वीर तो देखिए—कमाल उसी में है, उसी के बारे में खुर्शेद ने पेशेनगोई की थी।' इस पर नेता ने दबी जबान में कहा कि 'कलाकारी की भविष्यवाणी कलवरिया के कोलाहल में कोई सार मुझे तो आज तक दिखाई नहीं पड़ा। उसने कहा तस्वीर बदलेगी। तीस बरस गुजर गये न बदली—न बरसात। तस्वीर भी बदलती है! नौ हाथ की हर्रे, चार अंगुल की जुबान। उसने कहा था कि जिस दिन मैं सत्य में, त्याग में, यकरंगी प्रेम से गिरूँगा उसी दिन चित्र में मेरे बायें हाथ में जो प्रस्फुटित कमल है, संकुचित होकर झुक जायगा, दाहिने हाथ की कटार सामने खड़े महात्मा गांधी के सीने की तरफ सध जाएगी और मेरा खूबसूरत मुखड़ा स्याह पड़ जायगा। पर आज तक हुआ कुछ नहीं, किया सब कुछ—तुमसे क्या छिपा है।' लेकिन—तसवीर का दूसरा रुख देखते ही पंजाबी उछलकर चिल्ला पड़ा—'लो, कंचनराम जी, देख लो। तुम्हारे हाथ का कमल मुरझा गया, कटार महात्मा जी की तरफ मुड़ गयी। ओह—हिप-हिप हुर्रे। कलाकार भविष्यद्वक्ता—खुर्शेद! खुदा तुझे सलामत रखे!' बेशक तस्वीर बदली हुई। वही हाथ, वही मुँह, वही मूरतें—पर 'पोज' बदला—हैरत।' कंचनराम का चेहरा देखा तो पिटा हुआ तथा—'यह बदल कैसे गयी—खुर्शेद! खुर्शेद!!' नेताराज के मुँह से निकला। खुदा सब कुछ देखता है, पंजाबी ने मजूर किया ताने से—'उसकी अपनी आँख नहीं। सर्वदर्शी विश्व विलोचन वह अक्सर बन्दों को आँखों की दूरबीन बनाकर दूसर दूर भविष्य का विस्तार—एनलार्जित मार्जित—रूप देख लेता है। जिसको बीनाई बख्शे परवरदिगार। तेरे अन्तर का द्रष्टा तो आज चित्र-स्रष्ठा यह खुर्शेद ही है। पर अफसोस आज तू कैसा जानी दुश्मन है खुर्शेद का कि उसे एक बार न मारकर बोटी-बोटी कर रहा है। उसके माडल गर्ल पर तेरी बद नजर। तेरे डर से रुस्तम से शमा की शादी खुर्शेद ने

बरसो जल्द कर दी और चार दिन पहले तूने दंगे के बहाने खुर्शेद के घर आये दामाद को मरवा डाला ! अब शर्मा तेरी, रौशनी तेरी, महफिल तेरी ! क्या खूब तसवीर बदली है, कल का परम वैराग, आज का पतित अनुरागी। कल का जन सेवक आज का तन-सेवक। सत की दोहाई देने-वाले के चित का यह चिन्तनीय चित्र-विचित्र !' नेता अभागा पहले अवाक् रहा फिर सबसे पहले उसे गुस्सा आया कलाकार खुर्शेद पर—'मैं उसे अभी पकड़वा मँगाता हूँ। मेरी इच्छा आज्ञा है इस शहर में, मजिस्ट्रेट को नहीं, यह तस्वीर नहीं मानहानि है—क्लीयर। नेता की मान-हानि नतीजा जान-हानि। साले की जान न लूं तो मेरा नाम कचनराम नहीं।' इस पर पजाबी सरदार ऐसा सरसराया जैसे सरसर—'मैं कहता हूँ, मुझे बहुत बहकाइए नहीं, नेता जी ! इस बार मुझ ऐसी पड़ी है कि दार्शनिक बन गया हूँ···भले तमीज उसके जूते के फीते खोलने की न हो। क्या मारेगा भाई खुर्शेद को ? क्योंकि वह भविष्यद्वक्ता है। कलाकार है ? एक नेतुल्ले से कहीं ज्यादा रौशन दिल, रौशन दिमाग, रौशन आलम है। जबकि कला-कार की पूजा होनी चाहिए, तू जलता है ? दीपक की तरह नहीं, दीवाने परवाने की तरह नहीं, दोजख की तरह ? मृत्यु से लाल तेरे ये नेत्र। कला-कार की तरफ नहीं···महात्मा की तरफ···यह धारदार हथियार उसी समझदार के सीने की तरफ सधा है। यार, तू हमारा सरदार, नेता, तू ही *गिरेगा तो उठेगा कौन ? तू तापे हुआ, तू तपा हुआ, इस ठण्डी* राख को उतार। नहीं तो आ, आगे बढ पहले मुझे मार डाल। कुकर्मों के पाश में बँधे—पहले मेरी दोजखी जलन दूर कर। खुशामद नहीं, तू सब कुछ कर सकता है, यह वर्तमान तेरा असिल रूप नहीं, भ्रम है, मानस पर काई। हमारे इन्हीं पापों के सन्ताप से राष्ट्र पिता राष्ट्र गुरु ज्ञानी महात्मा दमबदम घुट-घुट कर बेदम बना जा रहा है। जिस कामधेनु ने कोटि-कोटि गुमराहों को *आजादी* के कल्पवृक्ष तक पहुँचाया उस कुकर्म कसाई के हाथ तू नहीं बचेगा। कुलवन्त कृतघ्न नहीं हो सकता। विष्ठा खाने वाली गाय भी दूध ही देती है, मद्य नहीं, हलाहल तो हर्गिज नहीं। बराबर ऊँचे से राह बतलाने वाला नेता ही निचाई पर आ जायगा तो जनता अनजान का क्या होगा ? एक सौ पचीस वर्ष तक जीने के इच्छुक महात्मा कर्मयोगीश्वर ने

हमारे पापों से परम पीड़ित होकर जीने की आशा छोड़ दी है। जब गाधी जी ही नही जीते रहेंगे तो कौन अभागा जीवित रहेगा?'

और कुयोग देखिए। इसी वक्त कोई साढ़े 6 बजे, तारवाले की आवाज बाहर से आयी। समाचार भयानक आया—सवा पाँच बजे प्रार्थना से पहले पिस्तौल से चार गोलियाँ दाग गोडसे नामक किसी हिन्दू तरुण ने महात्मा गाधी को मार डाला। और अब आगे की कथा—भोज-भंग, रस-भंग, रंग-भंग, आप न पूछें—आह वर्णनातीत !!

हाँ, इतना कहानीकार का धर्म है कि दूसरे दिन कचनराम ने अपनी सारी पाप कमाई दस लाख की रकम मे से नौ लाख हरिजन फण्ड में दान कर दिया और दसवाँ लाख नजर करने चले बूढे ईरानी ज्ञानी चित्रकार खुर्शेद को। पर उसके घर पहुँचने पर पता चला कि बारह घण्टा पहले ही महात्मा जी के मरने की खबर सुनते ही सहृदय कलाकार के हृदय की धड़कन बन्द हो गयी थी। कफ़न-दफ़न तक हो चुका था। खुर्शेद के घर में दिन दोपहर अँधेरा था। केवल शमा जल रही थी। बूढ़े कलाकार की नवोढा मॉडल गर्ल—वह हसीना छोकरी !

□□